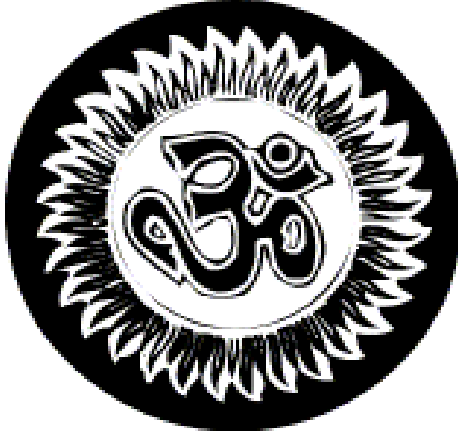
shreemate ramananday namah

ARTHA-PANCHAK

With Tattwatraya & Rahasyatraya

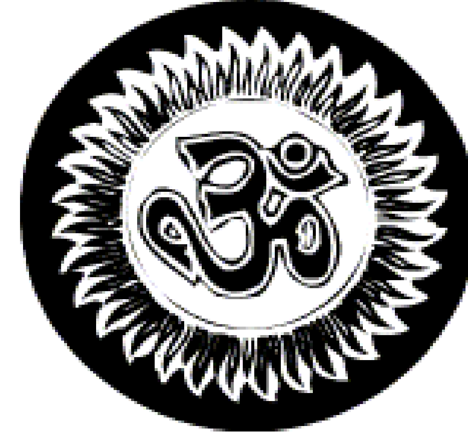


Hindi commentary
By
Swami Tribhuvanadas

श्रीमते रामानन्दाय नमः

अर्थपञ्चक

(तत्त्वत्रयरहस्यत्रयसहित)



व्याख्याकार
स्वामी त्रिभुवनदास

shreemate ramananday namah

ARTHA-PANCHAK

From shree-hanumat-samhita

With Tattwatray & Rahasyatray

Hindi commentary
By
Swami Tribhuvandas

"MANGALAM KUTIRAM", Ganga line,
SWARGASHRAM [rishikesh]
PAURI GARHWAL [UTTARAKHAND]

श्रीमते रामानन्दाय नमः

श्रीहनुमत्संहितान्तर्गत

अर्थपञ्चक

तत्त्वत्रयरहस्यत्रयसहित

हिन्दीव्याख्या

व्याख्याकार

स्वामीत्रिभुवनदास

मंगलम् कुटीरम्, गंगा लाइन
स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश)
पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

INTRODUCTION

In every Vedic literary work, there is advice and direction offered to the true seeker. The great seers have classified these advices into five topics which is presented with the "Artha panchak". The meaning of the arthapanchak being: the five topics worthy of knowing. Such is the relevance of the very name arthapanchak. First- that which is to be attained, the very supreme consciousness referred to as para-brahman or param-atma; second- the attainder which is the jivatma, the self one or soul; third- the method of attainment; fourthly,- the obstacles on the path of attainment; fifth- the fruits of attainment.

Artha panchak is the summary of our immense literary knowledge. It is imperative to every seeker to know it. The History, Puranas etc. sat-shastras and all the known-unknown great Saints imbibe the knowledge of the Artha panchak to make relevant to the seekers in the depth meaning of vedas through their talks and writings. Through these, the sadhaka[seeker] gets wide knowledge of the arthapanchak. In one of an ancient literature is "Hanumat Samhita", there exists as a form of dialogue between Shree Hanuman and

the great sage Agastya that which is the essential message of the Artha panchak. This book is a presentation of the same in a simplified manner for the benefit of hindi speaking readers.

In the basis of veda's all literatures finalized different countings of Tattwas[principals] in their own view. On the base of Upanishads The ultimate one Paramatma{The God} is defined as the three different forms of Tattwas[principals] in Vishishtadwait Vedant Darshan. This explanation of Tattwatray[three principals] we can get in book named "Shree Vaishnav Matabja Bhaskar", whose writer is Bhagwan Shree Raamanandacharya. He explained Tattwatrya's secret knowledge in meaningful four short shlokas in that book, after questioning of his disciple [student] Swami Surasuranandacharya.

Acharya Shree Swami Agradas is also the great follower of Shree Ramanandacharya, who wrote one Sanskrit book on above said book's three shloka, named as "Rahasyatraya" which is mixed with poem.

Above said both Rahasyatray explanation is also published in this book with Hindi commentary.

ॐ

आमुख

समस्त वैदिक शास्त्रों में कल्याणकामी मुमुक्षु पुरुष के लिये जो परम उपयोगी उपदेश दिये गये हैं। उन्हें ही मनीषी आचार्यों ने पाँच विषयों में वर्गीकृत करके 'अर्थपञ्चक' प्रस्तुत किया है। अर्थपञ्चक से तात्पर्य है- जानने योग्य पाँच विषय। यह इस अभिधान से ही स्पष्ट होता है। प्रथम-प्राप्य अर्थात् जिसे प्राप्त करना है वह परब्रह्म परमात्मा, द्वितीय- प्राप्त करने वाला स्वयं जीवात्मा, तृतीय- प्राप्त करने का उपाय, चतुर्थ- प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाएँ और पञ्चम-प्राप्ति का फल-

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं चैव तथा प्राप्तिविरोधि च।
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः॥

अर्थपञ्चक हमारी अपार वाङ्मय ज्ञान राशि का सार नवनीत है। इसका ज्ञान प्रत्येक मुमुक्षु के लिये अनिवार्य है। इतिहास, पुराण आदि समस्त सत्शास्त्र तथा प्रकट-अप्रकट सभी सन्त महापुरुष अपने उपदेश एवं वाणी साहित्य द्वारा वेदरूपी क्षीर सागर से अर्थपञ्चक रूप तात्पर्य को ग्रहण कर उसे मुमुक्षुओं तक पहुँचाते हैं। इन्हीं से साधक को अर्थपञ्चक का विशद ज्ञान होता है। इसी क्रम में श्रीहनुमत् संहिता नामक एक आर्षग्रन्थ में श्रीहनुमान्जी महाराज एवं महामुनि अगस्त्य के वार्तालाप के रूप में अर्थपञ्चक का सारगर्भित उपदेश प्राप्त होता है, जिसे हिन्दी भाषी पाठकों की सुविधा के लिये सरल व्याख्या सहित इस पुस्तिका में प्रकाशित किया जा रहा है।

वेद मूलक सभी दर्शनों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न तत्त्व गणनाएं निर्धारित की हैं। विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन में उपनिषदों को आधार बनाकर एक ही अद्वितीय परमात्मा को प्रकारान्तर से तीन तत्त्वों के रूप में समझाया गया है। तत्त्वत्रय का यह निरूपण 'श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर' नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के रचयिता भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी हैं। इसीमें अपने शिष्य स्वामी सुरसुरानन्दाचार्यजी के प्रश्न करने पर चार श्लोकों में तत्त्वत्रय का समास शैली में गूढ़ उपदेश किया गया है, इसे भी हिन्दी व्याख्या सहित यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

'श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर' ग्रन्थ में ही सुगमता पूर्वक निःश्रेयस प्राप्ति के लिये तीन विशिष्ट मंत्रों का व्याख्या सहित उपदेश प्राप्त होता है। इन्हें ही रहस्यत्रय कहा जाता है। भगवान् श्रीरामानन्द स्वामी की ही गौरवशाली शिष्य परम्परा के अनुपम आचार्य श्रीस्वामी अग्रदासजी ने भी रहस्यत्रय नामक एक संस्कृत निबन्ध द्वारा गद्य पद्यात्मक मिश्रित शैली में तीन मंत्रों का सविस्तार व्याख्यान किया है। ये दोनों रहस्यत्रय भी व्याख्या के सहित इस पुस्तिका में प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अर्थपञ्चक, तत्त्वत्रय तथा रहस्यत्रय जैसे दुर्बोध विषयों पर मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिये कुछ लिख पाना संभव नहीं था। इन विषयों का यथार्थ ज्ञान श्रद्धाभक्तिपूर्वक अविछिन्न सम्प्रदाय परम्परा द्वारा ही हाता है। मैं इन पर जो कुछ भी लिख सका हूँ उसे अपने सद्गुरुदेव विद्वद्वरिष्ठ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य श्रीमत् स्वामी नृत्यगोपालदासजी महाराज का कृपा प्रसाद मानता हूँ। दर्शनशास्त्र के महान् विद्वान, वीतराग सन्त ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी शंकरानन्द सरस्वती की स्नेहिल छाया में बैठकर मुझे विशिष्टाद्वैत वेदान्त के अध्ययन का अवसर प्राप्त

हुआ। इन गुरुजनों की महती कृपा प्राप्त होने से मैं अपने सौभाग्यशाली मानता हूँ। सर्वप्रथम ये व्याख्याएं विद्वदग्रगण्य श्रीमलूकपीठाधीश्वर महान्त श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज (वृन्दावन) की प्रेरणा से लिखी गई थीं। आप श्री ने ही 'उपासना दर्पण' नामक एक बृहद्ग्रन्थ में इनका प्रकाशन कराया था। इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके है। अब उनसे स्वीकृति लेकर साधकों के लिये इनका पृथक् पुस्तिका के रूप में प्रकाशन हो रहा है। अर्थपञ्चक के चतुर्थ श्लोक में वर्णित श्रीविग्रह और भगवद् गुणों के व्याख्यान में मुझे 'परम पद सोपान' नामक ग्रन्थ की पण्डित प्रवर स्वामी श्रीनीलमेघाचार्यजी द्वारा विरचित हिन्दी टीका से सहयोग प्राप्त हुआ है। हम उनके आाभारी हैं।

व्याख्याकार
फाल्गुन शुक्ल सप्तमी
वि॰ सं॰ २०६६

॥ श्रीराम ॥

शुभाशीर्वाद

(अनन्त श्रीविभूषित सद्गुरुदेव महान्त श्रीश्रीस्वामी नृत्यगोपालदासजी महाराज)

सन्त परम्परा में अनादिकाल से चला आ रहा है कि आत्म-परमात्म अनुभूति के लिये अर्थपञ्चक, तत्वत्रय एवं रहस्यत्रय का परिज्ञान अत्यावश्यक है। श्रीअयोध्याजी में स्वाध्याय के रूप में अद्यावधि यह क्रम विद्यमान है। श्रीहनुमत् संहितान्तर्गत अर्थपञ्चक आदि उपादेय हैं अन्यत्र भी यह सामग्री उपलब्ध है। विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों में यह प्रक्रिया प्रकारान्तर से स्वीकृत है।

श्री त्रिभुवनदासजी सम्प्रदाय के विद्वान हैं। इस दिशा में इनका प्रयास सराहनीय है। विस्तृत व्याख्या के माध्यम से गूढ़ तत्त्व सुबोध एवं सुगम हो गये हैं। शास्त्रीय विवेचन से स्वर्ण में सुगन्धि की झलक आती है। सम्प्रदाय के सन्तजन स्वाध्याय के माध्यम से अधिक से अधिक लाभ उठायें इस मंगलकामना एवं धन्यवाद के साथ–

नृत्यगोपालदास
श्रीमणिरामदास छावनी, अयोध्या

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

मङ्गल-कामना

(श्रीमलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदास देवाचार्यजी महाराज)

भक्तिप्रपत्तिपोषणपूर्वक सम्प्रदाय पुरस्सर पञ्चसंस्कार सम्पन्न वैष्णवता के लिये अर्थपञ्चक, तत्त्वत्रय, रहस्यत्रय का बोध होना प्रत्येक साधक को अत्यावश्यक है। प्रायः सैद्धान्तिक विवेचना वाले पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थ देवभाषा संस्कृत में हैं जो कि सर्वसामान्य के लिये सरलता पूर्वक बोधगम्य नहीं हैं।

सभी साधकों के परम हितेच्छु विद्वद्वरेण्य, सहज, सरल, तपः स्वाध्याय निरत स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी ने गूढ़तम क्लिष्ट सिद्धान्तों को प्राञ्जल भाषा में प्रस्तुत कर वैष्णव जगत का महान् उपकार किया है। श्रीसीतारामजी एवं पूर्वाचार्यचरणों में प्रार्थना है कि श्रीत्रिभुवनदासजी को प्रेमलक्षणाभक्ति प्राप्ति पूर्वक नित्य भगवत्-भागवत् कैंकर्य प्राप्त हो।

यह ग्रन्थ सभी साधकों को भगवत् प्राप्ति में परमोपयोगी होगा ऐसा विश्वास है।

दासानुदास

राजेन्द्रदास

श्रीमलूकपीठ, वंशीवट, वृन्दावन

विषय सूची

INTRODUCTION	i
आमुख	iii
शुभाशीर्वाद	vi
मङ्गल-कामना	vii
1. अर्थपञ्चक	१
ज्ञेय अर्थ	२
प्राप्य	३
प्राप्ता	३०
प्राप्ति के उपाय	३७
फल	४३
प्राप्ति के विरोधी	५०
2. तत्त्वत्रय	५५
प्रकृति	५५
आत्मा	५७
ब्रह्म	६०
3. रहस्यत्रय (प्रथम)	६४
प्रथम रहस्य	६४
द्वितीय रहस्य	७३
तृतीय रहस्य	७६
4. रहस्यत्रय (द्वितीय)	८०
प्रथम रहस्य	८०
प्रयोजन विशेषकेलिए मन्त्रके पदोंके अर्थका अनुसंधान	९3
द्वितीय रहस्य	९४
तृतीय रहस्य	९७

अर्थपञ्चक

(हनुमत्संहितान्तर्गत)

एक बार तत्त्वजिज्ञासु महर्षि अगस्त्यजीने गन्धमादन पर्वत पर जाकर वहाँ विराजमान श्रीसीतारामीय उपासना परम्पराके विशिष्ट आचार्य भक्ताग्रगण्य श्रीहनुमान्जीसे प्रश्न किया।

कथं श्रीरामे सम्प्रीतिर्जायते पवनात्मज।
गृहदारकुटुम्बेषु[१] वैराग्यञ्च कथं भवेत्।।१।।

अर्थ – श्रीअगस्त्यजी बोले, हे पवनात्मज! भगवान् श्रीराममें सम्यक् प्रीति किस प्रकार उत्पन्न हो और गृह, पत्नी तथा परिवारसे वैराग्य कैसे हो ? यह आप अनुग्रह करके मुझे बताएं।

व्याख्या– 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा' (नारदभक्ति सूत्र-२) भक्ति श्रीरामके प्रति परमप्रीतिरूपा होती है। **'साऽनुरागरूपा'** (दैवीभक्तिमीमांसा -६) श्री भगवान्के प्रति अनुरागरूपा (प्रीतिरूपा) भक्ति होती है। **'सा परानुरक्तिः ईश्वरे'** (शाण्डिल्य भक्तिसूत्र-२) वह भक्ति ईश्वरके प्रति पराप्रीतिरूपा होती है' इत्यादि वचनोंके अनुसार भगवान् श्रीरामके प्रति होने वाली प्रीति ही भक्ति है। सांसारिक पदार्थोंमें राग रहते यह सम्भव नहीं है। इसकी निष्पत्तिके लिए सांसारिक विषयोंसे वैराग्य अनिवार्यतः होना चाहिए। भक्तिकी निष्पत्तिका हेतु जो वैराग्य है। अगस्त्य मुनि उस वैराग्यकी उत्पत्तिके विषयमें भी प्रश्न करते हैं।

इस लोकसे लेकर सत्य लोक पर्यन्त जितने पदार्थ हैं, वे सभी विकारी हैं, अनित्य हैं। उनकी प्राप्तिमें भी दुःख है। ऐसा

१. टिप्पणी – यहाँ 'गृहदेहकुटुम्बेषु' पाठान्तर है। इसका अर्थ होता है कि घर, देह और कुटुम्बसे कैसे वैराग्य हो ?

समझकर उनमें रागकी समाप्ति ही वैराग्य है।

श्रीहनुमान् उवाच

कुम्भोद्भवपरश्रेयः श्रृणुष्व ते वदाम्यहम्।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयञ्च सर्वदा।। २।।

अर्थ – श्रीहनुमान्जी बोले – हे कुम्भोद्भव अगस्त्य! सुनिये मैं आपको परम कल्याणकारक तत्त्वका उपदेश करता हूँ। यह तत्त्व सर्वकालमें गोपनीय है, गोपनीय है, गोपनीय है।

व्याख्या – श्रीहनुमान्जीके द्वारा उपदिश्यमान तत्त्व गोपनीय है। अनधिकारीको गोपनीय तत्त्वका उपदेश नहीं करना चाहिए। इस सन्दर्भमें शास्त्रवचन प्रस्तुत है-

ऊषरे निर्वपेत्बीजं षण्डे कन्यां प्रयोजयेत्।
सृजेद्वा वानरे मालां नापात्रे शास्त्रमुत्सृजेत्।।

(शाण्डिल्य स्मृति)

चाहे ऊषर भूमिमें बीज बो दें, नपुंसकके साथ अपनी सर्वगुणसम्पन्ना कन्या का विवाह कर दें और वानरके गलेमें सुन्दर माला अर्पित कर दें, किन्तु अपात्रको शास्त्रके गोपनीय ज्ञानका उपदेश न करें।

अनधिकारीको गोपनीय तत्त्वका उपदेश करने वाला व्यक्ति उक्त शास्त्र वचनके उल्लंघनके फलस्वरूप प्रत्यवाय (पाप)का भागी होता है।

ज्ञेय अर्थ

ज्ञेयं प्राप्यस्य रामस्य रूपं प्राप्तुस्तथैव च।

प्राप्त्युपायं फलञ्चैव तथा प्राप्तिविरोधि च।।

अर्थपञ्चकमेतत्तु संक्षेपेण वदामि ते।।३।।

अर्थ – प्राप्य (प्राप्त करने योग्य) श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपको, प्राप्ता (प्राप्ति करने वाला) जीवात्माके स्वरूपको तथा श्रीरामचन्द्रजीकी प्राप्तिके उपाय, फल एवं प्राप्तिके विरोधी इन पाँच तत्त्वोंको जानना चाहिए। मैं तुमसे इन्हीं पाँच अर्थोंको संक्षेपमें कहता हूँ।

व्याख्या –

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं चैव तथा प्राप्तिविरोधिश्च।।
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः।।

इतिहास पुराणके सहित समग्र वेद प्राप्य परब्रह्मके स्वरूप आदि पाँच तत्त्वोंका प्रतिपादन करते हैं।

अर्थपञ्चकम् – **'अर्थ्यते प्रार्थ्यते इति अर्थः'** – मनुष्य अपने कल्याणके लिए जिस तत्त्व को चाहता है, वह अर्थ कहा जाता है। मोक्ष रूप परमकल्याणके साधन प्राप्य आदि तत्त्व हैं। ये मनुष्यके द्वारा प्रार्थनीय होनेके कारण अर्थ शब्दसे अभिहित हैं। इनकी संख्या पाँच है। पञ्च एव पञ्चकः। यहाँ पञ्च शब्दसे स्वार्थमें कन् प्रत्यय होकर पञ्चक शब्द निष्पन्न हुआ है। **अर्थानां पञ्चकानां समाहारः अर्थपञ्चकम्।** इस प्रकार पाँच तत्त्वोंके समूहको अर्थपञ्चक कहते हैं। इनका प्रतिपादक ग्रन्थ भी अर्थपञ्चक कहा जाता है। अर्थपञ्चकमें बताए गए प्रथम अर्थ प्राप्य श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका वर्णन करते हैं –

प्राप्य

दिव्यानन्तगुणः श्रीमान् दिव्यमंगलविग्रहः।
षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नो मनोवाचामगोचरः।। ४।।

अर्थ – असीम करुणा वरुणालय श्रीरामचन्द्रजी अप्राकृत अनन्त (अपरिमित) गुण वाले हैं। श्रीजीके साथ नित्य सम्बन्ध रखने वाले हैं। दिव्यमंगल विग्रहको धारण करने वाले हैं। षड्गुण और

ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं। मन, वाणीके अविषय हैं।

व्याख्या –

दिव्यानन्तगुण – प्रकृति में विद्यमान सत्त्व, रज और तम गुण प्राकृत गुण कहे जाते हैं तथा प्रकृतिके संसर्गसे होने वाले गुण भी प्राकृत कहे जाते हैं। संसारी जीवोंके गुण प्राकृत हैं। श्रीभगवान् प्रकृतिसे परे हैं। इसलिए उनके गुण प्राकृत नहीं है, बल्कि दिव्य हैं। दिव्य शब्द का अर्थ है– अप्राकृत। श्रीभगवान्के अनन्त गुण हैं। **'नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः।'** (श्रीमद्भागवत १/१८/१४) ब्रह्मा, शंकर आदि महान् योगेश्वर भी प्राकृत गुणोंसे रहित श्रीहरिके अप्राकृत कल्याणकारक गुणोंका अन्त नहीं पा सके। इन गुणोंकी संख्या न होनेके कारण ये गुण अनन्त कहे जाते हैं। अथवा सागरकी तरह अगाध होनेसे इनकी थाह न मिलनेके कारण ये अनन्त कहे जाते हैं। ये दिव्य गुण कल्याणकारक हैं। इनके अनुसन्धानसे भगवत्प्रीतिकी अभिवृद्धि होती है।

कल्याणकारक गुणों का वर्णन

श्रीरामभद्रमें अनन्त कल्याणकारक गुण विद्यमान हैं। वे गुण दो प्रकारके हैं। कुछ गुण उनके परत्वको अर्थात् बड़प्पनको सिद्ध करते हैं। उन गुणोंको परत्वोपयोगी कल्याणगुण कहते हैं। कुछ गुण श्रीरामभद्रके सौलभ्यको सिद्ध करते हैं, उन गुणोंको सौलभ्योपयोगी कल्याणगुण कहते हैं। श्रीभगवान्में दो प्रकारकी विशेषताएँ हैं– (१) श्रीभगवान् सबसे श्रेष्ठ हैं इसी श्रेष्ठताको ही परत्व कहते हैं। (२) श्रीभगवान् अत्यन्त सुलभ हैं। इसी सुलभताको ही सौलभ्य कहते हैं। श्रीभगवान् परमस्वतन्त्र हैं। अन्य सभी पदार्थ श्रीभगवान्के परतन्त्र हैं। परमस्वतन्त्र होनेके कारण ही श्रीभगवान् परात्पर कहलाते हैं। परात्पर होते हुए भी श्रीभगवान् परम सुलभ है। परत्व और सौलभ्यका एकत्र समावेश होने पर ही उसको प्राप्त करनेके लिए लोकमें प्रवृत्ति होती देखी जाती है अन्यथा नहीं। उदाहरण– सुमेरु

पर्वत स्वर्णमय होनेसे अवश्य श्रेष्ठ है, परन्तु उसे प्राप्त करनेके लिए मनुष्य प्रयत्न नहीं करते, क्योंकि वह दुर्लभ है। वैसे ही मिट्टी और पत्थर इत्यादि पदार्थ अत्यन्त सुलभ हैं तो भी उनको प्राप्त करनेके लिए मनुष्य प्रयत्न नहीं करते क्योंकि उनमें परत्व (महत्त्व) नहीं है। श्रीभगवान्‌में परत्व और सौलभ्य दोनों ही हैं। अतएव मनुष्योंकी श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर अपने अभिमतको सिद्ध करनेके लिए प्रवृत्ति होती है। श्रीभगवान् परात्पर होनेसे परमस्वतन्त्र हैं, साथ-साथ सुलभ भी हैं, अतएव उनका आश्रय लेनेके लिए साधकोंकी प्रवृत्ति होती है। यदि श्रीभगवान् केवल स्वतन्त्र ही बने रहते सुलभ न होते, तो साधकों केलिए उनका आश्रय लेना ही असंभव हो जाता क्योंकि कोई दुर्लभ वस्तुका आश्रय नहीं ले सकता है। परत्वको ऐश्वर्य नामसे तथा सौलभ्यको माधुर्य नामसे कहा जाता है। जिन गुणोंको समझनेके कारण श्रीभगवान्‌के विषयमें गौरवबुद्धि, संकोच, मर्यादा पालनमें तत्परता तथा भय उत्पन्न होते हों उन गुणोंको ऐश्वर्य (परत्व) कोटिमें गिनना चाहिए। जिन गुणोंका अनुभव करनेपर श्रीभगवान्‌के विषयमें चित्ताकर्षण, स्नेह, दर्शनोत्कण्ठा तथा सम्मिलनकी इच्छा उत्पन्न हो उन गुणोंको माधुर्य कोटिमें गिनना चाहिए। ऐसे परत्व (ऐश्वर्य) और सौलभ्य (माधुर्य)के उपयोगी अनन्त गुण उसी प्रकार श्रीभगवान्‌में विद्यमान हैं, जिस प्रकार विशाल क्षीरसमुद्रमें गाम्भीर्य (गहराई) और माधुर्य इत्यादि गुण विद्यमान रहते हैं।

श्रीभगवान्‌में विद्यमान ये कल्याणगुण नित्यसिद्ध हैं। श्रीभगवान्‌को छोड़कर दूसरे किसीके अधीन नहीं हैं। इन गुणोंकी चरम सीमा श्रीभगवान्‌में ही पायी जाती है अन्यत्र नहीं। इन गुणोंमें सौशील्य, वात्सल्य, मार्दव, आर्जव, सौहार्द, साम्य, कारुण्य, माधुर्य, गाम्भीर्य, औदार्य, चातुर्य, स्थैर्य, धैर्य, शौर्य, पराक्रम, सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्व, कृतित्व और कृतज्ञता इत्यादि गुण सौलभ्यके साधक तथा ज्ञान बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज ये छः गुण परत्वके साधक हैं। इन गुणोंके स्वरूप और स्वभाव इस प्रकार हैं-

१. **सौशील्य** - श्रीभगवान्‌में यह एक स्वभाव है कि श्रीभगवान् सबसे सब दृष्टियों से बड़े होते हुए भी अत्यन्त नीच लोगोंके साथ भी मिलकर रहते हैं, वह भी अपने बड़प्पनको छिपाकर उनसे मिलकर रहते हैं, श्रीभगवान् इस अभिप्रायसे ही बड़प्पनको छिपाये रहते हैं कि कहीं बड़प्पनको दिखाने पर ये भयभीत होकर भाग न जाएं। इस प्रकार जीवोंको भय न होनेके लिए अपने बड़प्पनको छिपाये हुए श्रीभगवान् इन मन्द जीवोंके साथ निश्छलभावसे मिलकर रहते हैं। इस गुणको ही सौशील्य कहते हैं। भगवान् श्रीरामने निषादराज, शबरी, वानर और विभीषण इत्यादिसे मिलकर तथा श्रीकृष्णावतारमें मालाकार, कुब्जा, व्रजयुवती, गोपबालक और सुदामासे मिलकर इस दिव्यगुणको व्यक्त किया है।

२. **वात्सल्य** - श्रीभगवान्‌को अपने आश्रितों पर इतना प्रेम होता है कि वे उनके दोषों पर ध्यान ही नहीं देते हैं, दोषोंके भण्डार बने हुए भी जीव यदि श्रीभगवान्‌का आश्रय लेना चाहें तो श्रीभगवान् उनके दोषोंकी तरफ ध्यान न देकर उनको अपनानेके लिए लालायित हो जाते हैं। जिस प्रकार गौ अपने नूतन उत्पन्न हुए वत्सके शरीरमें लगे हुए मलिन पदार्थको देखकर घृणा न करती हुई प्रेमसे चाटते हुए मलिन पदार्थको नष्ट कर उस बछड़ेको शुद्ध बना देती है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी आश्रित जीवोंके पाप इत्यादि दोषोंको देखकर घृणा न करते हुए अपने क्षमा इत्यादि गुणोंके द्वारा उन दोषों को नष्ट कर जीवोंको शुद्ध बनाकर अपनानेके लिए लालायित रहते हैं। श्रीभगवान्‌के इस दिव्यगुणको ही वात्सल्य कहते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रने विभीषणशरणागतिके प्रसंगमें **'दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम्'** अर्थात् 'यदि श्रीविभीषणमें दोष हो तो भी, सन्तोंके लिये यह दोष गर्हित नहीं है' ऐसा कहकर तथा माता श्रीसीताजीने

श्रीहनुमान्‌जीसे राक्षसियोंको बचाते हुए **‘न कश्चिन्नापराध्यति’** अर्थात् जगत्‌में कोई भी जीव निरपराध नहीं, अपराधी जीवोंको भी अपनाना ही होगा। इस प्रकार कहकर इस महागुणको व्यक्त किया है। वात्सल्य गुण होनेसे श्रीभगवान्‌में क्षमा गुण भी सिद्ध होता है।

३. **मार्दव** – श्रीभगवान् आश्रितोंके विरहको नहीं सह सकते, अतएव आश्रितोंके साथ श्रीभगवान्‌का रहना अनायास सिद्ध हो जाता है। श्रीभगवान्‌के इस गुणको ही मार्दव कहते हैं। अत एव भगवान् श्रीरामचन्द्रने रावणसंहार होनेके बाद श्रीविभीषणके द्वारा स्नान इत्यादि करनेके लिए प्रार्थना किये जाने पर कहा कि –

तं विना कैकयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम्।
न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च।।

(वाल्मीकीय रामायण)

४. **आर्जव** – श्रीभगवान् जैसा सोचते हैं वैसा बोलते हैं तथा करते भी हैं। इस प्रकार मन, वाणी और शरीरसे एक रूप होकर कार्य करना, इस गुणको ही आर्जव कहते हैं। श्रीभगवान्‌में यह महागुण विद्यमान रहता है। अतएव श्रीभगवान्‌की उक्तिको सुनकर किसीके भी मनमें यह शंका नहीं होती कि श्रीभगवान् प्रतारण करनेके लिए ऐसा कहते हों। अतएव दुष्टा शूर्पणखाके द्वारा पूछे जाने पर श्रीरामचन्द्र भगवान्‌के द्वारा दिये जाने वाले उत्तरके विषयमें श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं **‘ऋजुबुद्धितया सर्वं व्याख्यातुमुपचक्रमे’** अर्थात् सरल चित्त होनेके कारण श्रीरामचन्द्र जी अपना वृतान्त सही-सही कहने लगे। इस प्रकार कहकर श्रीवाल्मीकि जीने श्रीभगवान्‌के आर्जव गुणको व्यक्त किया है।

५. **सौहार्द** – श्रीभगवान् हृदयसे सबका भला चाहते हैं, इस

महागुणको ही सौहार्द कहते हैं। श्रीभगवान्‌ने गीतामें **‘सुहृदं सर्वभूतानाम्’** ऐसा कहकर अपनेको सर्वप्राणियोंका परमहितैषी व्यक्त किया है। इस सौहार्द गुणके कारण ही श्रीभगवान् जीवोंके द्वारा अज्ञात सुकृत को कराकर उनको निमित्त मानकर विशेष कृपाकटाक्ष करते हैं।

६. **साम्य** – श्रीभगवान् आश्रय लेनेके लिए उत्सुक सबको समान रूपसे आश्रय देते हैं तथा सब आश्रितोंके साथ समान रूपसे प्रेममय व्यवहार करते हैं। आश्रय लेने वाले चाहे जाति गुण और आचरणकी दृष्टिसे श्रेष्ठ हों अथवा निकृष्ट हों, श्रीभगवान् इन बातों पर ध्यान न देकर उन सबको समान रूपसे आश्रय देते हैं। श्रीभगवान्‌ने श्रीगीतामें **‘समोऽहं सर्वभूतेषु’** कहकर अपनी इस समताको व्यक्त किया है। श्रीरामचन्द्र भगवान्‌ने महर्षि भरद्वाज तथा शबरीके यहाँ भी समान रूपसे खाया है। वानरराज सुग्रीव और रावण के भाई विभीषण दोनोंका समानरूपसे आदर किया है।

७. **कारुण्य** – श्रीभगवान् निःस्वार्थ होकर दूसरेके दुःखको हटाना चाहते हैं। इसी महागुणको ही करुणा और दया कहते हैं। श्रीभगवान् परमदयालु हैं। अतएव प्रलयकालमें पक्षहीन पक्षीके समान देहेन्द्रियादिसे रहित जड़भावापन्न जीवोंको देखकर करुणासे ही सृष्टि करते हैं तथा जीवोंको देह और इन्द्रिय इत्यादि देते हैं। जीवोंके अज्ञानको दूर करनेके लिए तथा हित और अहितको समझनेके लिए वेदादि शास्त्र प्रदान करते हैं। अपार दयालु होनेके कारण ही रक्षाभार को स्वयं वहन करते हैं, शास्त्राज्ञाके अनुसार कार्य करने वाले याज्ञिक, उपासक और शरणागतोंको

अभिमत फल प्रदान करते हैं। बारम्बार जन्म लेकर जीवोंने दुर्वासना और दुःसंस्कारोंको बढ़ा लिया है। उनकी दुर्वासना इत्यादिको दबानेके लिए ही श्रीभगवान् संहार करते हैं जिससे सम्पूर्ण प्रलयकालमें चुपचाप पड़े रहनेके कारण जीवोंके दुःसंस्कार बहुत दब जाते हैं। इस प्रकार श्रीभगवान् करुणाके अधीन होकर सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं। करुणा ही श्रीभगवान्‌को जीवों पर अनुग्रह करनेके लिए प्रेरित करती है, इस प्रकार इस महागुणके कारण ही श्रीभगवान् जीवोंकेलिए लाभदायक सिद्ध होते हैं।

८. **माधुर्य** – श्रीभगवान् उपाय बनते समय तथा प्राप्य बनते समय भी जीवोंको परमभोग्य प्रतीत होते हैं। यही माधुर्य गुण है। दुग्ध पित्तरोगनिवृत्तिका साधन है क्योंकि दुग्ध पीनेसे पित्तरोग शान्त होता है, पित्तरोग वालोंके लिए दुग्ध उपाय बनता है, पित्तरोग की निवृति होने पर दुग्धपान स्वंय फल हो जाता है। उपाय बनते समय तथा स्वयं फल होते समय भी दुग्ध मधुर ही रहता है, उसी प्रकार श्रीभगवान्‌को उपाय मानने वाले तथा प्राप्य मानने वाले सबको श्रीभगवान् मधुर ही लगते हैं। श्रीभगवान् अत्यन्त मधुर हैं, इसलिए भगवदनुभवमें डूबे हुए साधकोंको विषयानुभवसे होने वाला सुख अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होता है। जो श्रीभगवान्‌से द्वेष करते हैं, उनको मारनेके लिए जब श्रीभगवान् उनके समक्ष उपस्थित होते हैं, तब उनके मन और नेत्रका आकर्षण करते हुए श्रीभगवान् उनको भी मधुर ही लगते हैं फिर दूसरोंके लिए क्या कहना है? श्रीभगवान् सौन्दर्यनिधि तथा आनन्दमय होनेसे परम मधुर हैं।

९. **गाम्भीर्य** – श्रीभगवान् गम्भीर हैं। इसलिए गम्भीर हैं कि कोई भी इन बातोंको नहीं समझ सकता कि श्रीभगवान् कैसे-कैसे भक्तों पर अनुग्रह करते हैं? भक्तोंके मनोरथोंको

कैसे-कैसे पूर्ण करते हैं? किस समयमें क्या करने वाले हैं? ये सब श्रीभगवान्‌की रहस्यमय बातें हैं। इनको बड़े-बड़े योगी लोग भी नहीं समझ सकते हैं। इसलिए श्रीभगवान् गम्भीर कहलाते हैं। श्रीभगवान् आश्रितोंके अपराधको जानते हुए भी न जानते जैसे रहते हैं, श्रीभगवान्‌से उन-उन अभिमत अर्थोंका प्रतिग्रह लेने वालों में जो-जो दोष हैं, उन सबको जानते हुए भी श्रीभगवान् न जानने जैसा व्यवहार करते हैं। इस कारणसे भी श्रीभगवान् गम्भीर कहे जाते हैं। श्रीभगवान् उन-उन कर्मोंका फल भुगाते हुए अत्यन्त हितमें ही पर्यवसान कराते हैं, इस मर्मको समझना भी कठिन है, इसलिए श्रीभगवान्‌को गम्भीर कहते हैं और उनके उक्त स्वभावको गाम्भीर्य कहते हैं।

१०. **औदार्य** – श्रीभगवान् उदार हैं। चाहे लेने वाले पात्र अत्यन्त निकृष्ट हों, तथा दिये जाने वाले पदार्थ अत्यन्त उत्कृष्ट हों, इन बातों पर ध्यान न देते हुए श्रीभगवान् किसी प्रत्युपकार पर भी दृष्टि न रखते हुए सर्वस्वका यहाँ तक कि स्वयंका भी वितरण करनेमें उसी प्रकार रसानुभव करते हैं। जिस प्रकार धार्मिक पिता पुत्रोंको अपनी सम्पतिका वितरण कर प्रसन्न होते हैं। श्रीभगवान् अधिकाधिक वस्तुओंको देकर भी अधिक प्रसन्न नहीं होते हैं। वे भक्तोंको स्वस्वरूप देकर भी यही समझते हैं कि हमने कुछ नहीं किया। श्रीभगवान् लेने वालोंकी भी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं। अत एव श्रीभगवान्‌ने आर्त और अर्थार्थी भक्तोंको भी गीतामें **'उदारा सर्व एवैते'** इस प्रकार उदार कहकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ायी है। इन सब कारणोंसे श्रीभगवान् परमोदार कहे जाते हैं। श्रीभगवान्‌की उदारताके कारण ही जगत्‌की रक्षा होती है।

११. **चातुर्य** – श्रीभगवान् परम चतुर हैं। वे आश्रितोंके दोषोंको

छिपाते हुए उनकी शंकाओंको दूर करते हुए बड़ी चतुराईसे उन्हें अपनाते हैं। यह चतुराई ही चातुर्य कही जाती है। श्रीभगवान्‌की चतुराईको कोई समझ नहीं सकता।

१२.स्थैर्य – श्रीभगवान् स्थिर हैं। शरणागतोंको अपनानेके विषयमें अन्तरङ्ग लोगोंसे दोष दिखाये जाने पर भी वे विचलित नहीं होते हैं, अनेक प्रकारसे उन अन्तरङ्गोंको समझाकर तथा राजी करके अन्तमें शरणागतोंको अपनाते ही हैं। यही उनकी स्थिरता है। श्रीभगवान्‌ने श्रीविभीषण शरणागतिके प्रसंगमें इस दिव्यगुणको व्यक्त किया है।

१३.धैर्य – श्रीभगवान् इष्टजनोंके वियोगका प्रसङ्ग उपस्थित होने पर भी अपनी प्रतिज्ञाको कभी नहीं छोड़ते, किन्तु प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेमें ही तत्पर रहते हैं। इसलिए धीर कहलाते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रने श्रीजानकीजीसे यह कहते हुए इस गुणको व्यक्त किया है कि –

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।।

(वा.रा.)

अर्थात् – हे श्रीजनकनन्दिनि, चाहे हम अपने प्राणोंको छोड़ दें, चाहें श्रीलक्ष्मणजीको तथा आपको भी छोड़ दें, यह सब सम्भावित है परन्तु प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ सकते। विशेष कर ब्राह्मणोंके लिए प्रतिज्ञा करके उसे कभी नहीं छोड़ सकते। अपनी प्रतिज्ञामें दृढ़ रहना ही धैर्य है। श्रीभगवान् इसलिए भी धीर कहे जाते हैं क्योंकि बलवान् शत्रुको भी तुच्छ समझकर अपने कार्यको सम्पन्न करते रहते हैं। श्रीभगवान्‌ने बलवान् शत्रु रावणके जीते रहते और समुद्रका लंघन न करने पर भी श्रीविभीषण को राज्यतिलक देकर इस गुणको व्यक्त किया है।

१४.शौर्य – श्रीभगवान् शूर हैं। सहायहीन होते हुए भी श्रीभगवान् भयंकर शत्रुके सैन्यमें भी उसी प्रकार निर्भय

होकर प्रवेश करते हैं। जिस प्रकार कोई अपने सैन्यमें निर्भय होकर प्रवेश करता है। श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानयुद्ध इत्यादि प्रसंगोंमें इस गुणको व्यक्त किया है।

१५.पराक्रम – शत्रुओंके सैन्यमें घुसकर नाना प्रकारसे शत्रुओंका संहार करना पराक्रम है। श्रीमद्रामचन्द्रने रावणके सैन्यका वध करते समय इस गुणको व्यक्त किया है। उस प्रसंगमें श्रीभगवान्‌के पराक्रमका वर्णन करते हुए श्रीवाल्मीकि जी ने कहा है –

छिन्नं भिन्नं शरैर्दग्धं प्रभग्नं शस्त्रपीडितम्।
बलं रामेण ददृशुर्न रामं शीघ्रकारिणम्।।

(वा.रा.)

राक्षसोंने श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा बाणोंसे छिन्न-भिन्न, दग्ध-भग्न तथा पीड़ित अपने सैन्यको देखा। अति शीघ्र इस कार्यको सम्पन्न करने वाले श्रीरामचन्द्रजीको नहीं देखा। ये दोनों गुण आश्रितोंके शत्रुओंको नष्ट करनेमें काम आते हैं।

१६.सत्यकाम – श्रीभगवान् अपने तथा आश्रितोंके लिए अनन्त नित्य भोग्य पदार्थों को रखते हैं, इसलिए सत्यकाम कहलाते हैं।

१७.सत्यसंकल्प – श्रीभगवान् सत्यसंकल्प हैं। उनका संकल्प न कभी व्यर्थ होता है, न दूसरे किसीसे प्रतिबद्ध ही होता है। श्रीभगवान् संकल्प मात्रसे ही अपने अवतार इत्यादि अपूर्व रूपोंकी सृष्टि करते हैं तथा जगत्‌की सृष्टि, स्थिति, प्रलय और मोक्षप्रदान इत्यादि कार्य करते हैं। अत एव वे सत्यसंकल्प कहलाते हैं।

१८.कृतित्व – श्रीभगवान् दूसरोंका उपकार करनेमें ही रत रहते हैं, इसलिए कृति कहलाते हैं और उनका उपकार करनारूप गुण कृतित्व कहलाता है। श्रीभगवान् '**अपि कश्चिन्मुमुक्षुः स्यात्**' सृष्टि करने पर एकाध मुमुक्षु निकल आयेंगे। ऐसा सोचकर ही

जीवोंके कल्याणार्थ जगत्‌की सृष्टि, स्थिति, प्रलय इत्यादि विराट कार्य करते हैं, तथा श्रीराम, श्रीकृष्ण इत्याद्यवतारोंमें अपने लिए कुछ कर्तव्य न होने पर भी जीवोंके कल्याणार्थ ही वर्णाश्रम धर्मोंको उसी प्रकार करते रहते हैं जिस प्रकार बच्चेके स्वास्थ्यके लिए तन्दुरुस्त माता भी औषधका सेवन करती है। श्रीभगवान् दूसरोंका उपकार करके ही अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। श्रीवाल्मीकिजीने इस गुणको व्यक्त करते हुए कहा –

अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह।।

(वा.रा.)

लंकामें श्रीविभीषणजीको राक्षसराजके रूपमें अभिषिक्त कर श्रीरामचन्द्रजी कृतकृत्य होते हुए निश्चिन्त होकर हर्षित हुए।

१६.कृतज्ञता – श्रीभगवान् कृतज्ञ हैं। यदि दूसरोंके द्वारा कोई अनुकूल कार्य सम्पन्न हो जाय तो श्रीभगवान् उसे कभी नहीं भूलते हैं, भले ही उत्तरकालमें उन लोगोंके द्वारा अत्यन्त अपकार क्यों न बन जायें। स्वयं भी अनन्त प्रत्युपकार क्यों न कर दिये हों तो भी श्रीभगवान् उस क्षुद्र उपकारका स्मरण करते ही रहते हैं, उस क्षुद्र उपकारके निमित्त उनके सम्बन्धी लोगों तककी रक्षा करनेके लिए उद्यत रहते हैं, इतना सब कुछ करके भी यही समझते रहते हैं कि हमने कुछ भी नहीं किया, हम अभी तक उऋण नहीं हुए हैं इत्यादि। श्रीरामायणमें श्रीदशरथ महाराजके दरबारमें श्रीरामचन्द्र भगवान्‌के कल्याणगुणोंका वर्णन करती हुई प्रजाने कहा कि –

न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवतया।
कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।।

(वा.रा.)

श्रीरामचन्द्र जी ज्ञानवान् होनेके कारण दूसरोंके द्वारा किये

गये सौ अपकारोंका भी स्मरण नहीं करते। किसीके किसी तरह सम्पन्न हुए एक उपकारसे भी अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं। श्रीभगवान्‌में इतने ही गुण नहीं हैं, बल्कि इसी प्रकार अनन्त महागुण हैं। इन गुणोंका अनुसन्धान करनेसे जीवोंको यह विश्वास होता है कि हम श्रीभगवान्‌का आश्रय ले सकते हैं, श्रीभगवान् हमको अवश्य अपनायेंगे, हमारी रक्षा अवश्य करेंगे।

श्रीमान् – यहाँ पर श्री शब्दसे '**भूमनिन्दा प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः'**। इस वार्तिकसे 'नित्ययोग' (नित्य सम्बन्ध) अर्थमें मतुप् प्रत्यय होकर श्रीमान् शब्द सिद्ध होता है। इसका अर्थ है – श्रीजीके साथ सर्वदा रहने वाले राम। '**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ**' इस यजुर्वेद ३१/२२/२२ वचनके अनुसार श्रीजी भगवान्‌की अर्धांगिनी हैं। श्रीजीके साथ परब्रह्म श्रीरामचन्द्र जी का नित्य संश्लेष उन्हीं दोनोंके निम्नवचनोंसे प्रतिपादित है –

''अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा।''

(वा.रा. ६/११८/२०)

जिस प्रकार भगवान् भुवनभास्करकी प्रभाका उनके साथ नित्य संबन्ध है। उसी प्रकार मेरे साथ सीताका नित्य संबन्ध है।

''अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा।।''

(वा.रा. ६/२१/१५)

जैसे भास्करके साथ उसकी प्रभाका नित्य संबन्ध है। वैसे ही श्रीराघवके साथ मेरा नित्य संबन्ध है।

भास्कर धर्मी है। प्रभा उसका स्वाभाविक धर्म है। स्वाभाविक धर्मकी अपने आधारभूत धर्मीसे पृथक् सिद्धि (स्थिति) नहीं हो सकती है। ऐसे धर्म और धर्मीका अपृथक्‌सिद्धि सम्बन्ध होता है। यह नित्य ही होता है।

राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।

अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी।।

(वि.पु. १/९/१४४)

सभी अवतारोंके अवतारी परब्रह्म श्रीराम जब रघुवंशमें अवतार लेते हैं। तब श्रीजी राजा जनकके यहाँ सीता रूपमें अवतरित होती हैं। उनका श्रीकृष्ण रूपमें प्रादुर्भाव होने पर वे रुक्मिणी रूपमें अवतरित होती हैं तथा भगवान्‌के अन्य अवतारोंमें भी ये सर्वदा उनके साथ ही रहती हैं। उनसे इनका वियोग कभी नहीं होता है। श्रीभगवान् जिन-जिन रूपोंमें अवतार लेते हैं। उन-उन रूपोंके अनुरूप ये भी अपना रूप बना लेती हैं। श्रीरघुनाथ जी सदा श्रीजीके साथ ही विराजते हैं। इसलिए जीवको उनके समीप जानेमें सुविधा होती है क्योंकि श्रीसीताजीके सामने अपराधीको दण्ड देनेमें श्रीरामचन्द्रजीको उसी प्रकार संकुचित होना पड़ता है, जिस प्रकार माताके समक्ष पुत्रको दण्ड देनेमें पिताको संकुचित होना पड़ता है। वे जगज्जननी होनेके कारण अपराधी जीवोंके दोषोंको छिपाकर उन शरणागत जीवोंको अपनानेका आग्रह करती हैं। श्रीजीके विषयमें गोस्वामी तुलसीदास जीने भी मानसमें कहा है -

जासु अंश उपजहिं गुन खानी।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।

(रा.च.मा. १-१४८-३)

जिस प्रकार श्रीभगवान्‌के सभी अवतारोंके मूल श्रीराम जी हैं उसी प्रकार श्रीजीके सभी अवतारोंकी मूल श्रीसीता जी हैं।

दिव्यमंगलविग्रह - जो पदार्थ सहज में चित्त का आलम्बन बन सके तथा मंगलकारक हो वह शुभाश्रय कहलाता है। ऐसा शुभाश्रय एकमात्र श्रीभगवान्‌का दिव्यमंगल विग्रह ही है। प्रकृतिके सम्बन्धसे रहित अपना आत्मस्वरूप एवं ब्रह्मस्वरूप शुभ होने पर भी मनका आश्रय नहीं हो सकता है। अन्य स्थूल पदार्थ मनके आश्रय होने पर भी शुभ नहीं हैं। शुभत्व और आश्रयत्व ये दोनों विशेषताएं मिलकर एकमात्र श्रीभगवान्‌के दिव्य मंगल विग्रहमें ही रहती है।

इसलिए उसे शुभाश्रय कहा जाता है। मूलश्लोकमें आये हुए दिव्य शब्दका अर्थ है- अप्राकृत। **''न भूतसंघसंस्थानो देहोऽस्य परमात्मनः''** (महाभारत) इस परमात्माका देह भूतोंके समूहसे निर्मित आकृति वाला नहीं है। **न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मांसमेदोऽस्थिसंभवा** (वायु पु.पू.ख. ३४/४०) (वाराहपुराण ७५/४४) श्रीभगवान्‌का मांस, मेद और अस्थिसे निर्मित प्राकृत शरीर नहीं है। उनके सभी शरीर अप्राकृत ही हैं। **''चिदानन्दमय देह तुम्हारी''** इस प्रकार श्रीरामचरितमानसमें भी परमात्माके विग्रहको अप्राकृत कहा गया है।

श्रीरामचन्द्रजीका श्रीविग्रह इन्द्रनीलमणिमयपर्वतके समान है, इन्द्रनीलमणिमयपर्वत उन्नत एवं श्याम होगा, वैसे ही उनका श्रीविग्रह उन्नत एवं श्याम है, यह श्याम विग्रह देखने वालोंके नेत्रोंमें तापको नष्ट कर शीतलताका संचार करता है। इन्द्रनीलमणि प्रकाशवान् होनेसे वह पर्वत भी प्रकाशसम्पन्न होगा। वैसे ही श्रीरामजीका श्रीविग्रह हजारों सूर्योंसे भी बढ़कर प्रकाशवान् है, अतएव श्रीविग्रह परमभोग्य प्रतीत होता है। उस इन्द्रनीलमणिमय पर्वतमें संभव है कि सुन्दर रमणीयरत्नमय तालाब हो। जिसमें निर्मल जलकी अधिकताके कारण लहरें उठती रहें। वैसे ही इन्द्रनीलमणिमय पर्वतके समान श्रीविग्रहमें लहर मारने वाला कान्तिमण्डल तालाबके समान प्रतीत होता है। उस तालाबमें जिस प्रकार रक्तकमलों का समूह विकसित होकर उस तालाबको लाल बना देता है जिससे वह श्याम पर्वत भी लाल दिखायी देने लगता है, उसी प्रकार इस कान्तिमण्डलमें लालिमा लिए हुए वक्षःस्थल, अधर नेत्र, हस्त, नाभि, चरण और कमर ये खिले हुए लाल कमलोंके समान दिखाई देते हैं, इन अवयवोंकी लालिमाके कारण नीलाम्बुजश्याम श्रीराम भी थोड़ी लालिमा लिए हुए दिखाई देते हैं। श्रीजीके वासस्थान होनेके कारण वक्षःस्थल लाल दिखाई देता है। अन्य अंग तो लाल हैं ही। खिले हुए लाल कमलोंसे

परिपूर्ण जलाशयको धारण करने वाले इन्द्रनीलमणिमयपर्वतके समान श्रीरामभद्र इन लाल अवयवोंसे परिपूर्ण कान्तिमण्डलसे युक्त श्रीविग्रहको भक्तोंके कल्याणार्थ धारण करते हैं। श्रीविग्रहसे प्रवाहके रूपमें तेजोमयी छटा निकलती रहती है। उस तेजपुञ्जके मध्यमें श्रीभगवान्‌के अद्वितीय लावण्यसौन्दर्यमय श्रीविग्रहके दर्शन होते हैं। शास्त्रोंमें कहा गया है –

न ते रूपं न चाकारो नायुधानि न चास्पदम्।
तथापि पुरुषाकारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे।।

हे श्रीभगवान्! अवाप्तसमस्तकाम आपके लिए श्रीविग्रह, आयुध और वासस्थानकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि आप पूर्ण हैं, तथापि भक्तोंके लिए पुरुषाकार श्रीविग्रह और आयुध आदिको ध ारण कर प्रकाशते हैं। इन्द्रनीलमणि पर्वतके ऊपर पड़ी हुई बालसूर्यकी कान्तिके समान श्रीरामभद्रका पीताम्बर देखते समय नेत्रोंको अपार आनन्द प्राप्त होता है।

श्रीभगवान्‌का श्रीविग्रह नीलमेघके समान श्याम है। उस दिव्य विग्रहमें दिव्य भूषण चमक रहे हैं वे भूषण स्थिर विद्युतके समान दिखाई दे रहे हैं। लोकमें विद्युत अस्थायी रहती है। यदि कोई स्थिर विद्युत हो तो उसका प्रकाश भी स्थिर रहेगा। स्थिर विद्युत ही श्रीभूषणोंका दृष्टान्त हो सकती है क्योंकि श्रीभूषण श्रीभगवान्‌के दिव्य विग्रहमें स्थिर होकर चमकते रहते हैं। ये भूषण शोभाको बढ़ा रहे हैं। श्रीविग्रहमें उज्जवल किरीट, कुण्डल, हार, वनमाला, केयूर, कटक, कौस्तुभ, मेखला और नूपुर इत्यादि भूषण उसी प्रकार शोभाको बढ़ा रहे हैं जिस प्रकार कल्पवृक्षमें पल्लव, पुष्प और फल शोभाको बढ़ाते हैं। श्रीविग्रहमें आयुधरूपमें विराजमान धनुष-बाण इत्यादि भी उसी प्रकार शोभा को बढ़ाते हैं जिस प्रकार भूषण बढ़ाते हैं।

षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नः – ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज ये छः षड्गुण कहे जाते हैं।

१. **ज्ञान** – श्रीभगवान् अतीत, वर्तमान और अनागत सभी पदार्थोंको युगपद जानते हैं, यही उनका ज्ञान गुण है। वे सर्वज्ञ हैं। जगतमें कोई भी वस्तु उनके द्वारा अज्ञात नहीं है।

२. **बल** – श्रीभगवान् विना किसी श्रमके सभी पदार्थोंको धारण करते हैं। किसी श्रमके विना सभी पदार्थोंको धारण करनेका सामर्थ्य ही उनका बल है। भगवान् श्रीरामने श्रीकृष्णावतारमें गोवर्धनको धारण करके, श्रीवराहावतारमें भूमि का उद्धार करके, कच्छपावतारमें मन्दराचलको धारण करके इस गुणको व्यक्त किया है।

३. **ऐश्वर्य** – श्रीभगवान् चेतनाचेतनात्मक सम्पूर्ण जगतका नियमन करते हैं, इस कारण वे अन्तर्यामी कहे जाते हैं। उनका नियमन करनेका सामर्थ्य ही ऐश्वर्य गुण हैं।

४. **वीर्य** – श्रीभगवान् सबको धारण और नियन्त्रण करते हुए भी निर्विकार बने रहते हैं। निर्विकार बने रहनेका सामर्थ्य ही वीर्य गुण कहा जाता है।

५. **शक्ति** – श्रीभगवान्‌में अघटित घटना सामर्थ्य है। दूसरे लोग जिस कार्यको किसी भी प्रकार नहीं कर सकते हैं। श्रीभगवान् उस कार्य को अनायास कर देते हैं। यह अघटितघटनासामर्थ्य ही उनका शक्ति नामक गुण है। इस गुण के कारण ही श्रीभगवान् जगतके सभी प्रकारसे कारण हैं।

६. **तेज** – जो अपने अधीन न हो। श्रीभगवान् ऐसे किसी सहकारी कारणकी अपेक्षा न करके बड़े-बड़े बलवानोंको भी पराभूतकर देते हैं। दूसरोंको पराभूत करने (दबाकर रखने) का सामर्थ्य ही उनका तेज गुण हैं।

इस प्रकार षड्गुणोंसे सम्पन्न श्रीराम हैं।

श्लोकमें आए ऐश्वर्य शब्द का अर्थ है – उभयविभूतिनायकत्व। प्रभु श्रीराम लीला विभूति और त्रिपाद विभूति इन दोनों विभूतियोंके स्वामी हैं। श्रीभगवान् इस प्राकृत लोकमें अवतार लेकर सन्तापहारिणी, भवभयहारिणी, लोकरंजक विविध प्रकारकी लीलाएं करते हैं। इसलिए यह प्राकृत लोक ''लीला विभूति'' कहा जाता है। अप्राकृत साकेतध ााम त्रिपादविभूति है।

मनोवाचामगोचरः – श्रीभगवान् मन और वाणीके अविषय हैं अर्थात् मनसे उनको नहीं जान सकते हैं और वाणीसे उनका प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। मनके सहित वाणी जिनको बिना पाये लौट आती है– **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** (तै. उ.आ. २८) मनके सहित वाणी जहाँ नहीं जा सकती है **'मन समेत जहँ जात न वानी**' (मानस १/३४०/६) इस प्रकार शास्त्र भगवान्को मन, वाणीका अविषय कहते हैं किन्तु **मनसैवानुद्रष्टव्यम्** (वृह.उ. ४/४/१९) मनसे ही उनका साक्षात्कार करना चाहिए। **दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः** (कठो. ३/१२) सूक्ष्मदर्शी भक्त सूक्ष्म पदार्थोंको जाननेमें समर्थ, एकाग्र मनके द्वारा परमात्माका दर्शन करते हैं। इस प्रकार शास्त्र उनको मनका विषय भी कहते हैं। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध जैसे प्रतीत होने वाले वचनोंकी संगति यह है कि परब्रह्म श्रीरामका अशुद्ध (कामादिविकारोंसे युक्त) मनके द्वारा दर्शन नहीं किया जा सकता है किन्तु निष्काम कर्म और उपासनाके द्वारा शुद्ध (कामादिविकारों से रहित) हुए मनसे उनका दर्शन होता ही है। **तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** (मु.उ. १/२/१२)परब्रह्म को जाननेके लिए जिज्ञासु भक्त हाथमें समिधा लेकर श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरुके ही पास जाए। **'उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः'** (गीता ४/३४) वे तत्त्वदर्शी गुरुदेव तुमको ज्ञानका उपदेश करेंगे। इस प्रकार श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास जाकर उनसे परमात्म विषयक उपदेश प्राप्त करनेको कहा गया है। श्री गुरुदेव वाणीसे

श्रीभगवान्का प्रतिपादन करते हैं, इसके बिना उनका प्रतिपादन सम्भव नहीं। अतः वाणीके अविषयका अर्थ है कि वाणीसे उनकी इयत्ता (परिच्छेद या सीमा)का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है।

वेदवेद्यः सर्वसाक्षी सर्वोपास्यः स्वतन्त्रकः।
नित्यानां निजभक्तानां भोग्यभूतः श्रियः पतिः।।५।।

अर्थ – भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वेदोंके द्वारा ज्ञेय हैं, सभीके साक्षी हैं। सभीके उपास्य तथा स्वतन्त्र हैं। वे पराम्बा श्रीसीताजीके पति हैं। नित्य तथा सभी निज भक्तोंके भोग्य हैं।

व्याख्या –

वेदवेद्यः – भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण वेदोंके द्वारा वेद्य हैं, सकल वेद उनका ही प्रतिपादन करते हैं – **'सर्वे वेदाः यत्पदम् आमनन्ति'** – सम्पूर्ण वेद जिस प्राप्य ब्रह्मका वर्णन करते हैं। (कठो. २/१५) **'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'** (गीता १५/१५) सम्पूर्ण वेदों के द्वारा वेद्य मैं ही हूँ इत्यादि शास्त्रीय प्रमाणोंसे विरुद्ध होनेके कारण 'वेदोंके पूर्वभागका प्रतिपाद्य कर्म एवं उत्तरभागका प्रतिपाद्य बह्म है। 'यह केवलाद्वैती सिद्धान्तवादियोंका कथन त्याज्य है। वेदोंके पूर्वभागमें भी ब्रह्मके स्पष्ट प्रतिपादक अनेक वचन विद्यमान हैं। वस्तुतः पूर्वभागका भी प्रधान प्रतिपाद्य ब्रह्म है, कर्म तो अवान्तर प्रतिपाद्य है। दशरथनन्दन श्रीरामको वेदवेद्य निरूपित करने वाला **''वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे''** यह वचन प्रसिद्ध है।

पूर्वमीमांसक मतमें वेदोंका प्रधान प्रतिपाद्य यागादि कर्म है। इनके अंग द्रव्य (यागोपयोगी सामग्री) और देवता हैं। यागसे जन्य अदृष्ट (पुण्यविशेष) ही फलका जनक है। किन्तु वेदान्त सिद्धान्तमें वेदोंका प्रधान प्रतिपाद्य परब्रह्म है। यागादि उनके अंग हैं क्योंकि परब्रह्मको उद्देश्य करके यागादि कर्म किये जाते हैं। वेदविहित इन सभी कर्मोंके द्वारा उनकी ही उपासनाकी जाती है। वे ही सकल कर्मोंके फल प्रदान करने वाले हैं। कर्म जड़ होनेसे स्वयं कुछ भी नहीं कर सकता है। वेदोंमें कहीं साक्षात् ब्रह्मके वाचक शब्द हैं, कहीं

तत्तद्देवताओंका बोध कराते हुए उनके अन्तर्यामी ब्रह्मके वाचक शब्द हैं। इस प्रकार सकलवेदोंके प्रतिपाद्य परब्रह्म श्रीराम ही हैं।

सर्वसाक्षी – प्रभु श्रीरामचन्द्र जी सभीके साक्षी हैं। सर्वसाक्षीका अर्थ है – सबको प्रकाशित करने वाले। **'यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलं, यच्चन्द्रमसि, यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्'** (गीता १५-१२) आदित्य में विद्यमान जो तेज सम्पूर्ण जगतको प्रकाशित करता है। चन्द्रमामें जो प्रकाशक तेज है और जो अग्निमें है, उसको मेरा ही जानिये।

यद्यपि शांकरसिद्धान्तमें ज्ञाता और साक्षी पदोंके अर्थमें भेद है किन्तु विशिष्टाद्वैत वेदान्तमें आत्माको सविशेष होनेसे उक्त भेदमें हेतु न होनेके कारण उभयपद एकार्थक हैं तथापि भिन्न अर्थका हेतु प्रस्तुत किया जाता है –

श्लोक ४ में षड्गुणोंका वर्णन हो चुका है। उसके अन्तर्गत सर्वज्ञ पदका अर्थ है – सभीको जानने वाला। यदि सर्वसाक्षीका भी वही अर्थ किया जाय तो पुनरुक्ति दोष प्रसक्त होता है। अतः सर्वसाक्षी पदका अर्थ है – सभीके प्रकाशक।

सर्वोपास्यः – सभीके द्वारा स्वकल्याणके लिए श्रीभगवान् ही उपास्य हैं। ब्रह्मादि देवता भी उनकी उपासना करते हैं। ये देवता उपास्य नहीं हो सकते हैं बल्कि इन सबका कारण ही उपास्य होता है– **कारणं तु ध्येयः** (अथर्वशिखोपनिषत् –३)। प्रभु श्रीराम सबके कारण होनेसे सबके द्वारा उपास्य हैं। उनकी उपासनाके बिना किसीको भी प्रेय (भोग्य पदार्थ) और श्रेय (मोक्ष) नहीं मिल सकते हैं। **'तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी, राम नमामि नमामि नमामी'**। (मानस ७/१२३/७)

स्वतन्त्रकः – 'स्वतन्त्रः एव स्वतन्त्रकः'। स्वार्थे क प्रत्ययः। परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीराम ही स्वतन्त्र हैं और सब उनके अधीन हैं। **'अन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा'**। (तै.आ. ३/११/३) सभीके आत्मा श्रीराम सबके अन्दर प्रविष्ट होकर शासन करने वाले हैं। **'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः'**। (बृ. ५-८-८) हे गार्गी! इस अक्षर ब्रह्मके प्रशासनमें उसके द्वारा धारण किये हुए सकल जगतके प्रकाशक सूर्य और चन्द्र अपना अपना कार्य करते हुए स्थित हैं। वे सबके शासक होनेके कारण स्वतन्त्र हैं, और सब उनसे शासित होनेके कारण उनके अधीन हैं।

नित्यानां निजभक्तानाम् भोग्यभूतः – जिनका कभी भी संसारमें बन्धन नहीं हुआ है। वे सदा भगवान्की सेवा और दर्शनमें तल्लीन रहने वाले जीव नित्य कहे जाते हैं। **'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः'** – वह व्यापक परमात्माका परम भोग्य स्वरूप है। सूरि (नित्य) जिसका सदा साक्षात्कार करते रहते हैं। श्लोकस्थ नित्यपद अजहद्लक्षणासे मुक्तका भी बोधक है। जो उपासना करके संसार से निवृत होकर श्रीभगवान्की अबाधित सेवाके लिए दिव्य साकेतधाममें प्रविष्ट हो गये हैं, वे मुक्त कहलाते हैं।

श्लोकमें आये निजभक्त पदसे– **'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थाथी ज्ञानी च भरतर्षभ'।** (गीता ७/१६)। **रामभगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा**।। (मानस १/२१/६) इन वचनोंसे अभिहित आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी भक्तोंको ग्रहण करना चाहिए। जैसे वात्सल्यहृदया गाय पुराने बछड़ेकी अपेक्षा नूतन बछड़ेसे अत्यधिक प्रेम करती है। उसी प्रकार सहस्रों माता-पितासे बढ़कर वात्सल्य रखने वाले श्रीभगवान् नित्य और मुक्त भक्तोंकी अपेक्षा नूतन भक्तोंसे अतिशय प्रीति करते हैं। इसलिए अर्थ पञ्चकमें उन भक्तोंको निज भक्त कहा गया है। श्रीभगवान् नूतन भक्तमें आकर वैसे मिल जाते हैं, मानो कोई तापसे आर्त व्यक्ति तापको मिटानेके लिए तालाबमें डूबा हो।

श्रीभगवान्का स्वरूप भक्तोंका भोग्य है। भोग्यका अर्थ है – परम प्रीतिरूप अनुभवमें आने वाला अर्थात् परम प्रीतिका विषय।

परमप्रियके प्रति ही परम प्रीति होती है। श्रीभगवान् परमप्रिय है। अतः भक्तोंकी परम प्रीतिके विषय हैं।

श्रियः पतिः – परब्रह्म श्रीराम जी श्रीसीता जीके पति हैं। एक ही परमात्मा भक्तों पर अनुग्रह करनेके लिए अनादि कालसे दो रूपोंमें प्रकाशित हो रहे हैं। वे दो रूप हैं – श्रीराम और श्रीसीता। इन दोनोंका दाम्पत्य सम्बन्ध भी अनादि है।

ब्रह्मविष्णुमहेशानां कारणं सर्वव्यापकः।
मूलं तुह्यवताराणां धर्मसंस्थापकः परः।।६।।

अर्थ – परब्रह्म श्रीराम ब्रह्मा, विष्णु और महेशके कारण और सर्वव्यापक हैं, सभी अवतारोंके मूल धर्मसंस्थापक तथा पर हैं।

व्याख्या –

ब्रह्मविष्णुमहेशानां कारणम् – भगवान् श्रीराम ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी कारण हैं। ये त्रिदेव उन्हींके अंशसे उत्पन्न हुए हैं।

उपजहिं जासु अंश ते नाना, शंभु विरंचि विष्नु भगवाना।
सबकर परम प्रकाशक जोई, राम अनादि अवधपति सोई।।

(मानस)

जिनके अंशसे अनेक ब्रह्मा, विष्णु महेश उत्पन्न होते हैं। वे सबके परम प्रकाशक अनादि कालसे विद्यमान अवधपति श्रीराम हैं।

सर्वव्यापकः – भगवान् श्रीरामसे चेतनाचेतनरूप यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है – **'ईशावास्यम् इदं सर्वम्'** (ईशोपनिषत् -१) जगत् व्याप्य है, वे व्यापक हैं। व्यापकके विना व्याप्यका अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता है। व्यापककी व्याप्तिका आश्रय व्याप्य वस्तु होती है। अर्थात् व्यापक व्याप्यवस्तुको व्याप्त करके रहता है। श्रीभगवान् व्यापक होनेके कारण सम्पूर्ण जगतको व्याप्त करके रहते हैं।

मूलं तु ह्यवताराणाम् – भिन्न-भिन्न कालोंमें असुर संहार और भक्तजन परित्राणके लिए मत्स्य, कूर्म आदि श्रीभगवान्के

अवतार होते हैं। श्रीराम सभी अवतारोंके मूल अर्थात् अवतारी हैं। श्रीभगवान्के अंशावतार, कलावतार और विभूति अवतारके भेदसे नाना अवतार हैं। धनुर्धर भगवान् श्रीराम स्वयं उन सभी अवतारोंके अवतारी हैं –

अवतारस्तु बहवः कला अंशविभूतयः।
रामोधनुर्धरः साक्षात् सर्वेशो भगवान् स्वयम्।।

(शिवसंहिता)

सभी अवतार तो श्रीरामके अंश और कला हैं। सनातन ब्रह्म श्रीराम अवतारी हैं। (यहाँ सनातनका अर्थ है – सदा रहने वाले। अंशावतार और कलावतार तो अवतार कालमें ही दृष्टिगोचर होते हैं। श्रीराम सदा रहने वाले अवतारी हैं।) **एते चांशकलाः सर्वे रामो ब्रह्म सनातनः** (महारामायण तथा सुदर्शन संहिता) कला, अंश और विभूतिके भेदसे बहुत अवतार हैं किन्तु अवतारी, अव्यय, सच्चिदानन्द श्रीराम ही परब्रह्म हैं –

अवताराः बहवः सन्ति कलाश्चांशविभूतयः।
राम एव परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमव्ययम्।।

(भरद्वाज संहिता)

भगवान् रामानन्दाचार्यजीने **''अथादिपुरुषः साकेताधिपतिः कल्याणगुणकोदधिः भगवाञ्छ्रीरामः साधुपरित्राणादिस्वावतार-प्रयोजनान्यनुष्ठातुं वसुदेवगृहे श्रीकृष्णरूपेणावतीर्य''** (गीताभाष्य उपोद्धात) इस प्रकार गीताका उपदेश करने वाले श्रीकृष्णको परब्रह्म श्रीरामका अवतार कहा है। (वस्तुतः श्रीराम, श्रीकृष्ण एवं श्रीनारायणमें कोई भेद नहीं है। फिर भी उक्त वचन अपने आराध्यके प्रति अनन्य भावको दृढ़ करनेके लिए उपयोगी हैं।)

धर्मसंस्थापकः – भगवान् श्रीराम धर्मकी स्थापना करते हैं। वे ब्रह्माण्डका सृजन करने के पश्चात् ब्रह्माको उत्पन्न करके धर्मप्रतिष्ठापनके लिए उनको वेदोंका उपदेश करते हैं। पृथिवी पर असुरोंके द्वारा हरिभक्तोंको पीड़ा पहुँचाये जाने पर सच्चे भक्तोंकी

करुण पुकार पर वे अवतार लेकर असुर संहार करते हैं। वे वेदोंके उपदेश एवं असुर संहारके द्वारा धर्मकी स्थापना करनेसे धर्मसंस्थापक कहलाते हैं। वे वेद मूलक पाञ्चरात्र आगमका भी उपदेश करते हैं। जब-जब धर्मका ह्रास एवं अधर्मकी वृद्धि होती है। तब-तब श्रीभगवान् साधु परित्राण और धर्म संस्थापनके लिए अवतार लेते हैं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृत्ताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

(गीता ४/७-८)

जब-जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जनपीरा।।

(मानस)

द्विभुजश्चापभृच्चैव भक्ताभीष्टप्रपूरकः।
वैदेहीवल्लभोर्नित्यं कैशोरे वयसि स्थितः।
एवं भूतश्च ज्ञातव्यो रामो राजीवलोचनः।।७।।

अर्थ - दो भुजाओं वाले धनुर्धर श्रीराम भक्तोंके अभीष्टकी पूर्ति करने वाले हैं। वे विदेहतनयाके प्रिय तथा सदा किशोरावस्थामें रहने वाले हैं। इस प्रकार रक्त कमलके समान नेत्रों वाले श्रीरामको जानना चाहिए।

व्याख्या -

द्विभुजः - मरीचिमण्डले संस्थं बाणाद्यायुधलाञ्छितम्।
द्विहस्तमेकवक्त्रं च रूपमाद्यमिदं हरेः।।

(पद्म संहिता)

धनुष-बाणादि आयुधोंको धारण करने वाला दो हाथ और एक मुखवाला सूर्यमण्डलके मध्यमें स्थित यह श्रीहरिका प्रथम रूप है।

स्थूलं चाष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं प्रोक्तं चतुभुर्जम्।
परं तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्त्रयं यजेत्।।

श्रीभगवान्का अष्टभुज रूप स्थूल है। चतुर्भुज रूप सूक्ष्म है। किन्तु द्विभुज रूप पर कहा जाता है। इसलिए इन तीनों रूपोंकी अर्चना करनी चाहिए।

'चापभृत्' - 'रामः शस्त्रभृतामहम्' (गीता १०/३१) मैं शस्त्रधारियोंमें श्रीराम हूँ। पुरुषोत्तम श्रीराम अनेक दिव्यायुधोंको धारण करते हैं। शस्त्रधारियोंमें उनका कोई भी मुकाबला नहीं कर सकता है इसलिए गीतामें **'रामः शस्त्रभृतामहम्'** कहा है। अवतारी ही अवतार रूप धारण करते हैं। श्रीरामने ही श्रीकृष्ण रूप धारण किया है। इसलिए सकल विभूतियोंके आश्रय जो श्रीराम हैं, उनकी एक शस्त्रभृत्त्व (शस्त्रधारीपना) विभूतिका वर्णन यहाँ किया गया है। श्रीराम जी अपने हस्त कमलमें धनुषको धारण करते हुए संसारी जनोंको यह सूचित करते हैं कि तुम अपनी रक्षाका भार मुझ पर सौंप कर मेरी शरण में आ जाओ। तेरी सारी विपत्तियोंका निवारण मेरा धनुष करेगा। धनुषका एक भाग नीचे पादकी ओर रहता है। वह यह सूचित करता है कि हमें उनके श्रीचरणोंका ही आश्रय लेना चाहिए।

भक्ताभीष्टप्रपूरकः - श्रीभगवान् ही भक्तोंके सकल मनोरथोंको पूर्ण करने वाले हैं इसलिए उनका एक नाम भक्तवाञ्छाकल्पतरु भी है। वे ही कर्मियोंको कर्मफल, ज्ञानियोंको ज्ञानका फल एवं उपासकोंको उपासनाका फल प्रदान करते हैं। आर्त और अर्थार्थियोंको उनकी रुचिके अनुरूप धन ऐश्वर्यादि देते हैं। जिज्ञासुको आत्मसाक्षात्कार फल प्रदान करते हैं। ज्ञानी भक्तको अपना प्रेम प्रदान करते हैं। ज्ञानी भक्त वह है जो कि आत्मसाक्षात्कार होने पर भी भजन करता है। ज्ञानी भक्त को मैं अत्यधिक प्रिय हूँ , और वह मुझे अत्यधिक प्रिय है - **"प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः"** (गीता ७/१७) ज्ञानी भगवान्को निरतिशय प्रिय है - **ग्यानी प्रभुहि विशेषि पियारा** (मानस २२/७)

वैदेहीवल्लभः - विदेहस्य अपत्यम् स्त्री वैदेही। विदेहकी

पुत्री वैदेही कही जाती हैं। महाराज सीरध्वज जनकको देहाध्यास न होनेके कारण विदेह कहा जाता है। इनकी पूर्ववर्ती अनेक पीढ़ियाँ ऐसी ही थीं। इन सबकी विदेहताका कारण आत्मसाक्षात्कारके प्रतिबन्धक प्राचीन पुण्य-पापरूप कर्मोंकी नाशक ज्ञानाग्नि थी। ये ज्ञानरूप अग्निसे कर्म रूप अज्ञानके भस्म हो जाने के कारण अहन्ता-ममतासे पूर्णतः रहित जीवनमुक्त महापुरुष थे। **'अनन्तमिव मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन्। मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन''**।। (महाभारत शान्ति पर्व १७८/२) यह श्लोक इनकी स्थितिको व्यक्त करने वाला इन्हींका हृदयोद्गार है। शुकदेव सदृश वीतरागी महापुरुष इनके पास आकर शिक्षा ग्रहण करते थे। श्रीकृष्णने **''कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः''** (गीता ३/२०) कहकर मानव मात्रके लिए अनुकरणीय ज्ञान होने पर भी लोक संग्रहार्थ कर्म करने वाले उदात्त आचरणवान् महान् राजा जनकको उपस्थापित किया है। ऐसे आत्मज्ञानकी पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए जनकराजको जगज्जननी श्रीसीताजीके पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। लोकमें आत्मज्ञानीके रूपमें इनकी प्रसिद्धि है। किन्तु वृहदारण्यकोपनिषत्में याज्ञवल्क्य मुनिके साथ इनके ब्रह्मविषयक विशद संवाद का उल्लेख है। जनकपुरमें विश्वामित्रके सहित श्रीरामलक्ष्मणकी अगवानीके समय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म श्रीरामका अत्यन्त अनुराग पूर्वक अवलोकन होते ही इनके मन ने बलात् अपनी ब्रह्मात्मक (ब्रह्म का शरीर) आत्माके सुखका परित्याग कर दिया- **इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा, बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा।** (मानस) श्रीभगवान्के निवास स्थान अनेक होने पर भी **''तद्धाम परमं मम''** (गीता १५/६) इस प्रकार आत्मा (जीवात्मा)को ही उनका परमधाम (निवासस्थान) कहा गया है। ज्ञानयोगसे अपनी आत्माका साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) होता है। तदनन्तर परमात्माका साक्षात्कार होता है। प्रत्यगात्मा (जीवात्मा) आनन्द स्वरूप है। परमात्मा भी आनन्द स्वरूप है किन्तु परमात्माके

स्वरूपभूत आनन्दकी अपेक्षा जीवात्मस्वरूपका आनन्द नगण्य है इसलिए सम्मुख परमानन्दस्वरूप परब्रह्मका दर्शन होते ही आत्म सुखसे विदेह राज जनकजीका मन स्वयमेव हट गया। जनकपुरमें सहस्रों नरनारियोंने श्रीरामभद्रके दर्शन किये। उनकी लोकोत्तर सुन्दर रूपमाधुरीका पान करके उनके नेत्र तृप्त ही नहीं हो रहे थे। सुन्दर शोभासागर सुखधाम श्रीरामके सतत दर्शनसे चक्षुओंको विलक्षण आनन्दमय विश्राम मिलता है। अन्य जनकपुरवासियों तथा जनक जी महाराजके दर्शनमें अन्तर है। अन्यने अपने प्रियतम सम्बन्धी सुषमाशीलनिधान मनमोहन श्रीरामका लोकोत्तर दूल्हाके रूपमें दर्शन किया किन्तु महाराज विदेहने जामाताके रूपमें तथा परब्रह्मके रूपमें भी दर्शन किया।

श्रीराम सीता जीके निरतिशय प्रिय हैं इसलिए श्रीरामके वनगमन कालमें वहाँ उपस्थित होने वाले भयंकर कष्टोंकी परवाह न करके वे उनके साथ चली गयीं। श्रीराम जीके प्रति श्रीसीताजीका अगाध प्रेम श्रीमद्रामायण अयोध्याकाण्डके ३१-३२ सर्गों एवं श्रीमद्रामचरितमानस अयोध्या काण्ड ६४-६८ दोहोंमें देखने योग्य है।

नित्यं कैशोरे वयसि स्थितम् - श्रीमद्रामचन्द्र दिव्यलीलाएं करनेके लिए धराधाममें अवतरित होने पर क्रमशः बाल्य, कौमार्य और कैशोर अवस्था वाले होते हैं किन्तु वे अप्राकृत् दिव्य साकेत लोकमें सदा किशोरावस्थामें स्थित रहते हैं। श्रीभगवान् पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार इन पाँच रूपोंमें सुशोभित होते हैं, इनमें दिव्यधाममें विद्यमान इनका पर रूप सदैव किशोरावस्थामें ही प्रकाशित होता है। वह इस अवस्थामें रहनेके कारण अतिशय आह्लाद एवं आकर्षणका जनक है।

राजीवलोचन - नयनाभिराम श्रीराम कमलदलके सदृश विशाल एवं अत्यन्त आकर्षक नेत्रों वाले हैं। उनके नेत्रोंके चारों तरफका भाग

श्वेतकमलकी तरह श्वेत तथा दुग्धके समुद्रकी तरह दिखाई देता है, उनके मध्यमें उसकी शोभा बढ़ाती हुई कृष्णवर्णकी दो कनीनिकायें (पुतली) हैं जो क्षीरसागरमें शयन करने वाले श्यामसुन्दर भगवान्के समान दिखाई देती हैं, इन कनीनिकाओंके कारण श्रीनेत्र कृष्ण दिखाई देते हैं, तथा अञ्जन लगनेसे और भी काले दिखाई देते हैं, इन श्याम नेत्रोंसे दिव्य कृपाकटाक्षोंका प्रवाह इस प्रकार निकलता रहता है, जिस प्रकार बांधके छिद्रोंसे जल प्रवाह निकलता है। ये कटाक्ष तापत्रयसे व्यथित शरणागत जीवोंके ऊपर पड़कर उनके तापत्रयको नष्ट करते हैं, इतना ही नहीं, उनको अपार आनन्दरूपी शीतलताका भी अनुभव कराते हैं। ये मनोऽभिराम नेत्र भक्तोंके अविद्या आदि दोषोंको नष्ट कर ब्रह्मानन्दका अनुभव करानेके लिए उतावले हो रहे हैं। श्रीभगवान्के नेत्र दयारससे परिपूर्ण हैं, जिस प्रकार जलाधिक्यके कारण समुद्रमें लहरें उठती रहती हैं, अतएव समुद्र सर्वदा चञ्चल रहता है, उसी प्रकार ये नेत्र भी दयारस के अधिक भर जानेके कारण सर्वदा चञ्चल होते हुए कटाक्षरूपी लहरोंको प्रसारित करते रहते हैं। यद्यपि श्रीभगवान्का दर्शन करनेके लिए भक्तोंकी व्याकुलता बनी रहती है तथापि श्रीभगवान्की भक्तोंको देखनेकी व्याकुलता इससे भी बढ़कर बनी रहती है। अतएव श्रीभगवान्के श्रीनेत्र सर्वदा चञ्चल रहते हैं। श्रीभगवान्के नेत्रोंमें ऐश्वर्य और वात्सल्यके कारण थोड़ी लालिमा बनी रहती है इसलिए श्रीभगवान् रक्ताम्भोजदलाभिरामनयन कहलाते हैं। इनके श्रीनेत्र अत्यन्त लम्बे हैं, अतएव कर्णपर्यन्त पहुँचे हुए हैं, इन श्रीनेत्रोंके सौन्दर्यका वर्णन करना असम्भव है।

श्रीहनुमानजी महाराज प्राप्य परात्पर ब्रह्म श्रीरामके स्वरूपका वर्णन करके अब प्राप्ता प्रत्यगात्मा (जीवात्मा)के स्वरूपका वर्णन करते हैं–

प्राप्ता

स्थूलसूक्ष्मकारणतो भिन्नं कोषाच्च पञ्चकात्।

जाग्रत्स्वप्नाद्यवस्थानां साक्षिभूतं तु सर्वदा।।८।।

अर्थ – जीवका स्वरूप स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन शरीरत्रय तथा पचञ्कोशोंसे भिन्न है। यह जाग्रत तथा स्वप्नादि अवस्थाओंका साक्षी तथा सर्वदा विद्यमान रहने वाला है।

व्याख्या –

स्थूलसूक्ष्मकारणतो भिन्नम् – यह दृश्यमान पाञ्चभौतिक शरीर स्थूल शरीर है। इसके महत्, अहंकार, एकादश इन्द्रियाँ (चक्षु, श्रोत्र, त्वक्, रसना, घ्राण, मन, वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ), पञ्च प्राण और पञ्चभूत ये तेईस तत्त्व हैं। इसके अन्दर रहने वाला आत्मा इससे भिन्न है। यह प्रकाश्य (ज्ञेय क्षेत्र) है और आत्मा प्रकाशक (ज्ञाता क्षेत्रज्ञ) है। शरीर स्थूलता, कृशता आदि विकारों वाला है और आत्मा इन विकारोंसे रहित है। शरीरकी उत्पत्ति और विनाश होते हैं किन्तु आत्मा सर्वदा एक जैसा रहता है।

दिखाई देनेवाले स्थूल शरीरके अन्दर एक और शरीर है, जिसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यह महत्, अहंकार, एकादशेन्द्रियाँ, एक प्राण तथा पञ्च सूक्ष्मभूत इन उन्नीस तत्त्वोंसे निर्मित होता है। हृदय आदि स्थानों तथा कार्यके भेदसे प्राण पाँच प्रकारका होता है। सूक्ष्म शरीरमें हृदय आदि अवयव न होनेसे प्राण एक ही कहा गया है। सूक्ष्म शरीरमें विद्यमान सूक्ष्मभूत पञ्चीकृत ही हैं। यही भूत स्थूल शरीरके उपादान कारण होते हैं। जीव सूक्ष्म शरीरके साथ माताके गर्भमें प्रवेश करता है। वहाँ माताके द्वारा खाए हुए आहार से स्थूल शरीर का निर्माण होता है। सूक्ष्म शरीर सृष्टि के आरम्भसे लेकर प्रलय पर्यन्त अथवा मोक्ष पर्यन्त रहता है। एक योनिसे दूसरी योनिमें

जाते समय अथवा एक लोकसे अन्य लोकमें जाते समय यह जीवके साथ ही जाता है। सृष्टिके आरम्भसे लेकर अन्त तक भिन्न-भिन्न प्रकारके अनेक स्थूल शरीर प्राप्त होते हैं किन्तु उन सबके अन्दर प्रविष्ट रहने वाला सूक्ष्मशरीर एक ही रहता है। यह प्रकृतिका कार्य है, जन्य है। आत्मा प्रकृतिका कार्य नहीं है। नित्य है। यह ज्ञेय है, आत्मा ज्ञाता है। यह विनाशी है, आत्मा अविनाशी है, इस प्रकार कही गयी युक्तियों से आत्मा सूक्ष्म शरीरसे भिन्न सिद्ध होती है।

जीवका मोक्ष न होने पर प्रलयमें भी स्थायी रहने वाला एक शरीर है। जिसे कारण शरीर कहा जाता है। यह बन्धनका कारण होनेसे कारण शरीर नामसे अभिहित है। अज्ञान ही कारण शरीर है। यहाँ शरीर पद औपचारिक है। वेदान्त सिद्धान्तमें बन्धनका मुख्य हेतु पुण्य-पापरूप कर्म है। विष्णु पुराणमें '**अविद्या तु कर्मसञ्ज्ञा**' इस प्रकार कर्मका पर्याय अविद्या को बताया गया है। अनादि कालसे संचित पुण्य-पापरूप अज्ञानके कारण श्रीभगवान्‌का प्रत्यक्ष नहीं होता है। श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष ज्ञानके पूर्व इस प्रत्यक्ष ज्ञानका प्रागभाव रहता है। सिद्धान्तमें अभावको पृथक् पदार्थ नहीं माना जाता है। इसे भाव पदार्थका अवस्थान्तर माना जाता है। परमात्माके प्रत्यक्ष ज्ञानके पूर्व जीवके धर्मभूत ज्ञानकी जो अवस्था है, वही जीवनिष्ठ परमात्मज्ञानका प्रागभाव है। यह परमात्मा के प्रत्यक्षका प्रागभावरूप अज्ञान प्रलय कालमें भी रहता है। यह कर्मरूप अज्ञानसे जन्य होनेके कारण उसका कार्य है। इस कार्यभूत अज्ञानसे अहन्ता, ममता होती है, जिससे यह सांसारिक कर्मोंमें प्रवृत्त होकर बार-बार जन्म-मृत्युको प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार इसके बन्धनका हेतु परमात्माको न जानना रूप जो अज्ञान है, उसे बन्धन का कारण तथा शीर्यमाण होने से कारण शरीर कहा गया है। यह भी आत्मासे भिन्न है। यह भी ज्ञेय है, आत्मा ज्ञाता है, इस प्रकार आत्मा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरसे भिन्न सिद्ध होती है।

भिन्नं कोषाच्च पञ्चकात् - यहाँ पर आत्मस्वरूपके आवरकको कोश कहा जाता है। देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि ये पञ्च कोश हैं। देहसे भिन्न आत्माको पहले कहा जा चुका है। आत्मा ज्ञाता अर्थात् ज्ञानका कर्ता है। चक्षु आदि इन्द्रियाँ ज्ञानकी साधन अर्थात् करण हैं। करण कर्तासे भिन्न होता है। इस प्रकार इन्द्रियोंसे भिन्न आत्माको समझा जाता है। मनन करनेवाला आत्मा है। मनन करनेका साधन मन है। मननके साधन मनसे मनन करने वाला आत्मा भिन्न है।

प्राण वायुविशेषके कार्य हैं इसलिए भौतिक हैं। आत्मा भौतिक नहीं है। प्राणों की उत्पत्ति होती है, आत्माकी नहीं। सुषुप्तिमें प्राण कार्य करते हैं, आत्मा नहीं, इस प्रकार प्राणोंसे भिन्न आत्मा सिद्ध होती है।

बुद्धिका अर्थ है - ज्ञान। ''ज्ञानवानहम्'' ऐसी प्रतीति होती है, इस प्रतीतिसे आत्मा ज्ञानका आधार और ज्ञान आधेय सिद्ध होता है। जो जिसमें रहता है, वह उससे भिन्न होता है, इसलिए आधार आत्मामें रहने वाला आधेय ज्ञान उससे भिन्न ही है। देहादिकी कभी प्रतीति होती है, कभी प्रतीति नहीं होती, इसलिए भी देहादि से आत्मा भिन्न सिद्ध होती है।

तैत्तिरीयोपनिषत्‌में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच वस्तुओंका वर्णन है। इनमें विज्ञानमय आत्मा और आनन्दमय परमात्मा है। जिस प्रकार '**तस्माद् वा एतस्मात्**' कहकर एकसे पर उत्तर की वस्तुको कहा गया है उस प्रकार आनन्दमयसे पर किसीको नहीं कहा गया है। ''**आनन्दमयोभ्यासात्** (ब्र.सू. १/१/१३) '**आनन्दमयः परमात्मा भवितुमर्हति कुतः अभ्यासात्**' (आनन्द भाष्य) आनन्दमय परमात्मा ही है, उससे भिन्न कोश नहीं है। तैत्तिरीय श्रुति में वर्णित अन्नमयादि पाँचोंके लिए कोश शब्दका व्यवहार आधुनिकोंके मतसे है, श्रुति-सूत्र मतसे नहीं है।

तैत्तिरीयोपनिषत्‌में कोश शब्दका प्रयोग नहीं है। यदि अन्यत्र

इनके लिए कोश शब्दका प्रयोग हो तो विज्ञानमयको बुद्धि एवं आनन्दमयको बुद्धिकी सुखात्मिका वृत्ति समझना चाहिए।

श्रीमध्वाचार्य-परम्पराके अनुयायी स्वामी राघवेन्द्र तीर्थकी तैत्तिरीयोपनिषत्की खण्डार्थ व्याख्याके अनुसार १- अन्नमय, २- प्राणमय, ३- चक्षुः श्रोत्रमय (पचज्ञानेन्द्रिय) ४- मनोमय ५- वाङ्मय (पञ्चकर्मेन्द्रिय) ये पाँच कोश सम्भव होते हैं। यहाँ चक्षुः श्रोत्र अन्य ज्ञानेन्द्रियोंका तथा वाक् अन्य कर्मेन्द्रियोंका उपलक्षण है। **जाग्रतस्वप्नाद्यवस्थानां साक्षिभूतम् तु सर्वदा** - जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ये चार अवस्थाएं होती है। संसारी जीव आरम्भकी तीन अवस्थाओंमें रहता है। परमात्मा का साक्षात्कार होने पर देहके विद्यमान रहते जिस अवस्थाकी प्राप्ति होती है, उसे तुरीयावस्था कहा जाता है। जीवके सभी संसारिक व्यवहार जाग्रदवस्थामें ही सम्पन्न होते हैं। इस लोक और परलोककी प्राप्तिके हेतुभूत सभी कर्म इसी अवस्थामें होते हैं। जीव जब व्यवहार करते-करते थक जाता है तब विश्रान्तिके लिए निद्रावस्था होती है। जाग्रत और सुषुप्तिके मध्यमें होने वाली अवस्थाका नाम स्वप्नावस्था है। इस अवस्थामें चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ अपने कार्योंसे निवृत्त होकर मनमें स्थित हो जाती हैं। अब बाह्य पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता है। सूक्ष्मकर्मोंके भोगके लिए उपस्थित होने वाले स्वप्नकालमें केवल स्वप्न द्रष्टाके द्वारा अनुभाव्य स्वप्नकालीन ईश्वरसृष्ट पदार्थोंका ही ज्ञान होता है। सुषुप्तिमें मनका भी लय आत्मामें हो जाता है और वह आत्मा परमात्मामें अविभक्त होकर स्थित रहता है। इस अवस्था में बाह्य पदार्थ तथा स्वप्नके पदार्थोंका भान नहीं होता है। सुषुप्ति और मुक्तावस्थामें यह अन्तर है कि सुषुप्तिमें अज्ञान रहता है और मुक्तिमें नहीं। संसारी जीवोंको प्राप्त होने वाली जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंमें उनको अपनी आत्माका ज्ञान रहता ही है। ये अवस्थाएं और इनमें अनुभूयमान विषय साक्ष्य (दृश्य या ज्ञेय) हैं। आत्मा साक्षी (द्रष्टा, ज्ञाता या प्रकाशक) है। इस

प्रकार आत्मा इन अवस्थाओं और इनमें अनुभूयमान विषयों का सर्वदा साक्षी सिद्ध होता है।

चिदानन्दमयं नित्यं दिव्यविग्रहसंयुतम्।
अखण्डैकरसञ्चैव कैशोरे वयसिस्थितम्।।९।।
द्विभुजं सत्वसम्पन्नमीशसेवाप्रयोजनम्।
प्रभोर्नियाम्यं शेषत्वं ज्ञातव्यं स्वस्वरूपकम्।।१०।।

अर्थ - जीवात्मस्वरूप चिदानन्दमय, नित्य, प्रभु का नियाम्य तथा शेष है। यह शुद्ध सत्त्वमय, किशोरावस्था में स्थित, अखण्डैकरस दो भुजाओं वाले दिव्य शरीर से युक्त है। ईश्वर की सेवा करना इसका प्रयोजन है, इस प्रकार अपने स्वरूपको जानना चाहिए।

चिदानन्दमयम् - चैतन्य के आश्रय को चित् कहते हैं। यहाँ चैतन्य का अर्थ ज्ञान है। तथा चित् का अर्थ आत्मा है, इस प्रकार ज्ञान के आश्रय चेतनरूप आत्मा को चित् कहा जाता है। यहाँ चित् शब्द के द्वारा ज्ञानाधिकरण आत्मा का निरूपण किया जाता है। आत्मा इसी ज्ञान गुण के द्वारा सबका प्रकाशक (ज्ञाता) बनता है।

श्लोक में आये हुए आनन्दमय शब्द का अर्थ है - आनन्द स्वरूप। आत्मा ज्ञान स्वरूप है। अनुकूल रूपसे प्रतीत होने वाला ज्ञान ही आनन्द है। सभी को अपना आत्मस्वरूप अनुकूल ही प्रतीत होता है, प्रतिकूल नहीं। अनुकूल प्रतीत होने वाला अपना स्वरूपभूत ज्ञान ही आनन्द है। कादाचित्क प्रतीत होने वाली प्रतिकूलता तो औपाधिकी है। इस आनन्दरूप आत्मामें निरतिशय आनन्दरूप परमात्मा निवास करते हैं। इस प्रकार चित् और आनन्दमय पदों का निरूपण सम्पन्न होता है।

नित्यम् - आत्मा सर्वकालमें विद्यमान रहती है अर्थात् नित्य है। इसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होते हैं। **'नित्यो नित्यानाम्** (कठो.) नित्य आत्माओंमें परमात्मा नित्य है। **'न हन्यते हन्यमाने शरीरे'** (गीता २/२०) शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा

जाता है। 'ईश्वर अंश जीव अविनासी' (मानस) ईश्वर का अंश जीव उत्पत्ति, विनाश से रहित अर्थात् नित्य है।

नियाम्य – परमात्मा नियामक एवं जीव नियाम्य है। नियमन अर्थात् शासन करने वाले को नियामक कहते हैं। नियामक के द्वारा जिसका नियमन किया जाता है – उसको नियाम्य कहते हैं। **''य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरः यमात्मा न वेद् यस्य आत्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति''** (बृहदारण्यकोपनिषत् माध्यन्दिन शाखा ५-६-२२) इस मन्त्र में श्री परमात्मा को नियमन करने वाला तथा आत्मा (जीवात्मा) को नियाम्य कहा गया है।

शेषत्वम् – यथेष्टविनियोगार्हः शेषः। इच्छानुसार जिसका उपयोग किया जा सके वह शेष है। जीव श्रीभगवान् के लिए ही है। श्रीभगवान् से अतिरिक्त अन्य किसी के लिए नहीं है। श्रीभगवान् के प्रति जीव का शेषत्व उसका स्वभाविक धर्म है। अज्ञान के कारण अपने शेषत्व को न समझने से वह सांसारिक पदार्थों के अधीन अपने को समझता है। परम कृपालु श्रीगुरुदेव के उपदेश से अपने शेष स्वरूप को जानकर उसका अनुसन्धान करता है, तब वह श्रीभगवान् के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है। यथेच्छ उपयोग करने वाला शेषी है। जीव भी स्वयं को वस्त्रादि का शेषी एवं वस्त्रादि को अपना शेष समझता है। जीव का यह शेषित्व स्वाभाविक नहीं है किन्तु औपाधिक है। जीव कर्मरूप उपाधि के कारण अपने को सांसारिक पदार्थों का शेषी एवं उन पदार्थों को अपना शेष मानता है। वस्तुतः चेतन और अचेतन सबके स्वाभाविक शेषी श्रीभगवान् ही हैं। सब कुछ श्रीभगवान् का ही शेष है।

भक्त के द्वारा श्रीभगवान् की सेवा शरीर के बिना सम्भव नहीं है। मुक्तावस्था में भगवद्धाम में भी उनकी सेवा के लिए उपयुक्त अप्राकृत शरीर प्राप्त होता है। साधक दिव्यधाम में प्राप्त होने वाले शरीर के समान भगवत्सेवा के अनुरूप एक शरीर की भावना करता है। भावना से प्राप्त होने वाला शरीर भावनामय कहा

जाता है। कुछ गोपियाँ श्रीकृष्ण का मधुर वेणुवादन सुनकर इसी भावनात्मक शरीर के द्वारा भी उनके पास चलीं जाती थीं। इस भावनात्मक शरीर का वर्णन यहाँ किया जा रहा है –

सत्त्वसंपन्नं कैशोरे वयसिस्थितं अखण्डैकरसं द्विभुजं दिव्यविग्रहसंयुतम् – उपासक भगवत्सेवा के लिए उपयोगी जिस दिव्य शरीर से युक्त होता है। वह शरीर शुद्ध सत्त्वमय होता है। अर्थात् रजतम से रहित केवल सत्त्व से निर्मित होता है। रज-तम उपासना के प्रतिबन्धक हैं। शुद्ध सत्त्व उपासना का अत्यन्त उपकारक है। वह शरीर अखण्डैकरस है अर्थात् उपचय, अपचय, जरा आदि विकारों से रहित हमेशा एक जैसा रहने वाला है। श्रीभगवान् के शरीर के समान ही उपासक का शरीर होता है। उपास्य प्रभु श्रीराघवेन्द्र द्विभुज हैं, इसलिए उनके उपासक का भी शरीर द्विभुज है। यह सदा किशोरावस्था में स्थित रहता है। इस प्रकार नवम श्लोक में आये हुए 'दिव्यविग्रह संयुतम्' पद से लेकर दशम श्लोकस्थ 'सत्वसम्पन्नम्' पर्यन्त सभी पदों का अर्थ कुछ श्री वैष्णवाचार्यों के अनुसार किया गया। अन्य श्री वैष्णवाचार्यों का कथन है कि शरीर के विना प्रियतम की सेवा सम्भव न होने पर भी अपने किसी भी शरीर का चिन्तन करना उचित नहीं है। इनके मतानुसार प्रत्यगात्मस्वरूपके प्रतिपादन के प्रसंग में भी **'दिव्यविग्रह संयुतम'** से लेकर **'सत्त्वसम्पन्नम्'** पर्यन्त प्राप्य परमात्मस्वरूपका पुनः प्रतिपादन उनमें निरतिशय प्रेम होने के कारण किया गया है।

ईशसेवाप्रयोजनम् – परमेश्वर की सेवा करना ही इसका प्रयोजन है। सेवा, भक्ति और उपासना ये पर्याय शब्द हैं। **''अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्''** (गीता ९-२२) इस प्रकार श्रीभगवान् ने अनन्य भाव से भजन करने वालों के योगक्षेम का स्वयं निर्वाह करने की प्रतिज्ञा की है। जो परमात्मा सारी सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति

और लय करते हैं, उनके लिए भक्त का योगक्षेम वहन करना कोई बड़ा काम नहीं है। श्रीभगवान् सत्यसंकल्प हैं। वे भक्त के हित में की गई प्रतिज्ञा को कभी मिथ्या नहीं करते हैं। ऐसे श्रीभगवान् के आश्वासन देने के पश्चात् भी भजन न करके योग-क्षेम के साधनों में प्रवृत्त होने का प्रधान कारण है- श्रीभगवान् पर अविश्वास।

इस प्रकार ऊपर कही गयी रीति के अनुसार अपने आत्मस्वरूपको जानना चाहिए।

प्राप्ता आत्मस्वरूपके वर्णन के पश्चात् अब भगवत्प्राप्ति के उपाय का वर्णन किया जाता है-

प्राप्ति के उपाय

सर्वभूतदयाचैव सर्वत्र समदर्शनम्।
अन्यत्रानिन्दनं चैव स्वेशे स्नेहाधिकं तथा।।११।।
गुरावीश्वरबुद्धिश्च तदाज्ञापरिपालनम्।
स्वेशस्य तज्जनानाञ्च सेवनं मायया विना।।१२।।
प्रभोः कृपावलम्बित्वं भोक्तव्यं तत्समर्पितम्।
सच्छास्त्रेषु च विश्वासः प्राप्त्युपायमिहोच्यते।।१३।।

अर्थ – सभी प्राणियों के प्रति दया करना, सभी में समदर्शन करना, किसी की निन्दा न करना, अपने इष्ट में अधिक स्नेह करना, गुरु में ईश्वरबुद्धि रखना, उनकी आज्ञा का सम्यक् प्रकार से पालन करना, अपने आराध्य और उनके भक्तों की कपट के विना सेवा करना, प्रभु की कृपा का आश्रय लेना, भगवत्समर्पित पदार्थों का सेवन करना, ये इस ग्रन्थ में प्राप्ति के उपाय कहे जाते हैं।

व्याख्या – भक्ति ही भगवत्प्राप्ति का साक्षात् साधन है। बारहवें श्लोक में ''**स्वेशस्य सेवनं च तज्जनानां सेवनम्**'' इस प्रकार अन्वय होता है। **''स्वेशस्य सेवनम्''** का अर्थ है - अपने आराध्य की सेवा। **'सेवाभक्तिरुपास्तिश्च'** (सेवाभक्ति और उपासना पर्याय हैं) यह निघण्टुकारका कथन है। **'महनीयविषयप्रीतिरेव हि भक्तिः'** (लिंगपुराण उत्तरखण्ड) अर्थात् महान् परमात्मा में होने वाली प्रीति ही भक्ति है। **'स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्यभिधीयते'** परमात्मा का 'प्रीतिपूर्वक चिन्तन' ही भक्ति है।

भक्तियोग साध्य है। यहाँ पर वर्णित दयादि उसके अन्तरंग साधन हैं। इनके बिना भक्तियोग की निष्पत्ति नहीं हो सकती है।

भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग की अपेक्षा रखता है क्योंकि कर्मयोग और ज्ञानयोग करने के बाद ही वह उत्पन्न होता है। निष्काम भाव से कर्मों का आचरण करना ही कर्मयोग है। जीवात्मा के परिशुद्ध स्वरूपका निरन्तर स्मरण करना ही ज्ञानयोग है। कर्मयोग से चित्त शुद्ध होता है। ज्ञानयोग से परिशुद्ध जीवात्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है। परिशुद्ध स्वस्वरूपका साक्षात्कार करते समय साधक को प्रत्यक्ष रूपसे यह विदित हो जाता है कि मैं श्रीभगवान् का परतन्त्र दास हूँ, प्रकृति से विलक्षण हूँ, ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ इत्यादि। स्वस्वरूपका विशद साक्षात्कार होते ही साधक की अनायास श्रीभगवान् में उसी प्रकार भक्ति प्रवाहित होती है जिस प्रकार भ्रम से अपने को व्याध मानकर जीवनयापन करने वाले राजकुमार को ''मैं राजकुमार हूँ'' इस प्रकार स्वस्वरूपके विषय में विशदज्ञान उत्पन्न होने पर पिता महाराज के प्रति प्रेम अपने आप उत्पन्न होता है, इस प्रकार अंकुरित हुआ यह भक्तियोग शास्त्रविहित कर्मों के आचरण से बढ़ने लगता है क्योंकि जैसे-जैसे शास्त्रविहित कर्म के अनुष्ठान से चित्त शुद्ध होता है वैसे-वैसे भक्तियोग बढ़ता है, इसलिए कर्म भक्तियोग के अंग माने जाते हैं। शमदम इत्यादि भी भक्तियोग के अंग हैं, इस प्रकार भक्तियोग अपनी वृद्धि के लिए शास्त्रीय कर्म और शमदमादि की अपेक्षा रखता है। यह भक्तियोग बारम्बार शरणागति की अपेक्षा रखता है क्योंकि आरम्भ के समय साधक भक्तियोग की उत्पत्ति को रोकने वाले पापों को मिटाने में अपने को असमर्थ पाकर उनको मिटाने के लिए जब

श्रीभगवान् की शरण में जाते हैं, तभी भक्तियोग उत्पन्न होता है और बीच-बीच में विघ्न उपस्थित होने पर उनको मिटाने के लिए भी साधक को श्रीभगवान् की शरण में जाना पड़ता है। तभी अबाधगतिसे भक्तियोग बढ़ने लगता है, इसलिए भक्तियोग बारम्बार शरणागति की अपेक्षा करता रहता है। शरणागति की सहायता के बिना भक्तियोग का आगे बढ़ना कठिन है। जिस प्रकार राजा लोग चलते-फिरते समय अपने अन्तरंग सेवक के हाथ का सहारा लेकर चलते-फिरते हैं, जिस प्रकार कुम्भकार घड़ों का निर्माण करते समय बारम्बार हाथ से जल का स्पर्श करते रहते हैं, उसी प्रकार भक्तियोग बारम्बार शरणागति की सहायता लेता रहता है। अमृतधारा के समान अविच्छिन्न प्रेममयी स्मृतियों की धारा ही भक्तियोग का स्वरूप है। जिस प्रकार अमृतधारा मधुररसमय होती है वैसे ही श्रीभगवान् के विषय में होने वाली यह स्मरण धारा भी प्रेमरस से ओतप्रोत रहती है। जिस प्रकार तेल की धारा नहीं टूटती है वैसे ही यह स्मरण धारा भी नहीं टूटने वाली है। यह तभी टूटे जब दूसरा स्मरण बीच में आये। बीच में दूसरा स्मरण न आने पर यह स्मरण धारा अविच्छिन्न बनी रहती है। स्मरणों की बारम्बार आवृत्ति होने पर आगे होने वाले स्मरण इतने विशद हो जाते हैं कि प्रत्यक्ष के समान बन जाते हैं क्योंकि किसी वस्तु का बारम्बार स्मरण होने पर ऐसा भान होने लगता है कि वह वस्तु सामने दिखाई देती है। मारीच डर के मारे बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता था। अनवरत स्मरण के कारण उसको भान होने लगा कि श्रीरामचन्द्रजी प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं। अतएव उसने सहायता लेने के लिए उपस्थित हुए रावण से कहा -

वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम्।।

मैं चीर और कृष्णाजिनको धारण करने वाले धनुष को हाथ

में लिए श्रीरामचन्द्र को प्रत्येक वृक्ष में देख रहा हूँ। पाश हाथ में लिए हुए यमराज की तरह वे हमको दिखाई दे रहे हैं। इससे सिद्ध होता है, अनवरत आवृत्ति करने पर स्मरण प्रत्यक्ष के समान आकार को धारण करता है। यह भक्तियोग भी अनवरत आवृत्ति के कारण प्रत्यक्ष के समान बन जाता है। उस समय भान होने लगता है कि श्रीभगवान् सामने दर्शन दे रहे हैं, इस प्रकार प्रत्यक्ष के समान बनने वाला यह भक्तियोग ही अत्यन्त विशद होने के कारण शास्त्रों में स्वप्नधी और दर्शन इत्यादि शब्दों से वर्णित हुआ है। स्वप्नधी शब्द से वर्णन करने का भाव यह है कि जिस प्रकार स्वप्न में होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष प्रतीत होता है, वैसे ही यह स्मरणसन्तान भी अनवरत आवृत्ति के कारण प्रत्यक्ष प्रतीत होता है।

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्।।

(मनुस्मृति १२/११२)

सबके ऊपर शासन करने वाले सूक्ष्म से भी सूक्ष्म शुद्ध स्वर्ण के समान आभा वाले तथा स्वप्नज्ञान के समान विशद ज्ञान से ग्राह्य उस परम पुरुष श्रीभगवान् का चिन्तन करें। इस श्लोक में स्वप्नधी शब्द से मोक्ष का साधन विशदस्मरणधारात्मक भक्तियोग बतलाया गया है। उपनिषद् में कहा गया है कि

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

(मुण्डकोपनिषत् २/२/८)

बड़े-बड़े लोग भी जिनसे छोटे हैं ऐसे परात्पर श्रीभगवान् का दर्शन करने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है। सभी संशय छिन्न हो जाते हैं। इस साधक के कर्म नष्ट हो जाते हैं। यहाँ पर दर्शन शब्द से यही प्रत्यक्षसमानाकार वाली स्मरणधारा बतलायी गई है। इस प्रकार स्मरण धारारूप भक्तियोग अनवरत आवृत्ति के कारण प्रत्यक्ष

के समान विशद बन जाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ इस भक्तियोग के अङ्ग हैं। भक्तियोग में मन की एकाग्रता की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि एकाग्रता के अनुकूल देश और काल में प्रतिदिन इस भक्तियोग का अनुष्ठान किया जाय तो यह बढ़ता रहता है। साधक को अन्तिम स्मरण तक इस भक्तियोग को जारी रखना चाहिए।

भक्तियोग की व्याख्या करके उसके अन्तरङ्ग साधन सर्वभूत दया आदि की व्याख्या प्रस्तुत की जाती है – **'स्वार्थनिरपेक्षपरदुःखा-सहिष्णुत्वम् दया'** अपने किसी प्रयोजन की अपेक्षा न करके दूसरे के दुःख को सहन न कर सकना ही दया है। दया के होने से मनुष्य दयालु कहा जाता है। ऐसा मनुष्य स्वार्थ से सर्वथानिरपेक्ष होकर दूसरे की सेवा अवश्य करता है। इस गुण के बिना मनुष्य राक्षस ही है।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छा.उ. ३/१४/१) **सीय राम मय सब जग जानी** (मानस १-७-२) इस प्रकार सभी में अपने आराध्य प्रभु को देखना चाहिए। भेद बुद्धि करने से अनर्थ होता है। इसलिए सब कुछ श्रीराम ही हैं। ऐसी अभेद बुद्धि करनी चाहिए। जो जिसकी निन्दा करता है, वह उसके पापों को ग्रहण करता है। इस प्रकार निन्दा करने वाले का महान अनर्थ होता है। अतः पाप की जनक तथा भगवत्प्राप्ति की विरोधी निन्दा से सर्वथा बचना चाहिए। **पर निन्दा सम अघ न गरीसा**।

(मानस ७/१२०/२२)

'सब कुछ भगवान् ही हैं' ऐसा समझकर किसी से द्वेष नहीं करना चाहिए। और अपने आराध्य प्रभु में सबसे अधिक स्नेह करना चाहिए। **'गृणाति उपदिशति धर्मब्रह्मस्वरूपमिति गुरुः'** शिष्य को भगवत्प्राप्ति के साधन कर्म, ज्ञान, उपासना और ब्रह्म का

उपदेश करने वाले को गुरु कहते है। **'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैव कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः'** (श्वेताश्वेतरोपनिषत् ६/२३) जिसकी परमेश्वर में उत्कृष्ट भक्ति होती है तथा उसके समान ही गुरुदेव में भी उत्कृष्ट भक्ति होती है। उस विशुद्ध अन्तःकरण वाले मनुष्य को शास्त्रप्रतिपाद्य प्राप्य आदि पाँचों अर्थों का ज्ञान होता है। इस मन्त्र में गुरुदेव में श्रद्धा रखने का महान् फल कहा गया है। उसकी प्राप्ति के लिए गुरु में ईश्वरबुद्धि करनी चाहिए। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से भगवत्प्राप्ति में प्रतिबन्धक आ जाते हैं। अतः गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए। अपने आराध्य भगवान् तथा उनके भक्तों की कपट से रहित होकर सेवा करनी चाहिए। श्रीभगवान् के द्वारा प्रोक्त वैदिक मर्यादा का उल्लंघन ही उनकी सेवा में कपट है। साधु सन्तों को अपने गुरुदेव से भगवद्दर्शन और उसके साधन से अतिरिक्त किसी पदार्थ की अपेक्षा करना भी कपट है, ऐसे कपटी मनुष्यों को परलोक तो मिलता नहीं और वे यहाँ भी दुःखी होते हैं।

भगवान् की कृपा का आश्रय लेना चाहिए। भगवत्कृपा प्राप्त करने के लिए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए कि हे दयालो, हमें आपकी अहेतुकी कृपा में दृढ़विश्वास हो जाए। ऐसी प्रार्थना के फलस्वरूप उनकी अहेतुकी कृपा में विश्वास होता है। उसमें विश्वास होते ही मन स्वतः पापकर्मों से निवृत्त हो जाता है। कामनाओं की जो भट्टी मन में निरन्तर जलती रहती है, वह शीघ्र शान्त हो जाती है। हम जिन वस्तुओं का उपयोग करते हैं, वे सभी भगवान् की ही हैं, अतः श्रीभगवान् को अर्पण करके ही वे वस्तुएं अपने उपयोग में लेना चाहिए। वेदादि सच्छास्त्रों में विश्वास करना चाहिए। **श्रुतिस्मृतिर्ममैवाज्ञा तानुल्लङ्घ्य यो वर्तते। इच्छाचारी ममद्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः**। श्रुति, स्मृति मेरी ही आज्ञा है। जो मनुष्य इनका उल्लंघन करके आचरण करता है वह मेरा तथाकथित

भक्त होने पर भी वैष्णव भक्त नहीं है।

दया आदि साधनों का आचरण करने पर भक्तियोग उत्कृष्टता को प्राप्त होता है।

उपाय के निरूपण के पश्चात फल का निरूपण किया जाता है –

फल

प्रारब्धं परिभुज्याथ भित्वा सूर्यादि मण्डलम्।
प्रकृतेर्मण्डलं त्यक्त्वा स्नात्वा तु विरजाम्भसा।।१३।।
सवासनं देहद्वयं विसृज्य विरजो भवत्।
अतिवेगेन तां तीर्त्वा प्राप्य साकेतकं तथा।।१४।।
प्रविश्य राजमार्गेण सप्तावरणसंयुतम्।
नानारत्नमयं दिव्यं श्रीरामभवनं शुभम्।।१५।।
तत्र श्री भरताद्यैश्च सेव्यमानं सदा प्रभुम्।
विराजमानं वैदेह्या रत्नसिंहासने शुभे।।१६।।
स्वभावनया श्रीरामं प्राप्य सर्वसुखप्रदम्।
परानन्दमयो भूत्वावस्थानं फलमुच्यते।।१७।।

अर्थ – जीवात्मा स्वकृतभक्ति (रामाकारवृत्ति) से अपने आराध्य प्रभु का साक्षात्कार करके, प्रारब्ध कर्म को भोगकर, देहत्यागकर,सूर्यादिमण्डलों का भेदन करके, प्रकृति की सीमा का त्याग करके, विरजा नदी के जल से स्नान करके, वहाँ वासना के सहित कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर को छोड़कर, निर्मल होकर, अतिवेग से विरजा को पारकर, अप्राकृत दिव्य साकेत धाम को प्राप्त करके, राजमार्ग के द्वारा सप्त आवरणों से युक्त, नानारत्नों से निर्मित, अलौकिक और शुभ जगन्नियन्ता प्रभु के भवन में प्रवेश करके, वहाँ श्रीभरतादि के द्वारा सदा सेवित, शुभरत्नसिंहासन में वैदेही के साथ विराजमान, सभी को सुख प्रदान करने वाले करुणामूर्ति श्रीरामचन्द्र को प्राप्त करके, अत्यन्त आनन्दमय होकर

रहना फल कहा जाता है।

व्याख्या – १७ वें श्लोक में आये स्वभावनया पद का १३ वें श्लोक के आरम्भ में अन्वय होता है। इस पद का अर्थ है – भक्ति के द्वारा। उक्त पञ्चश्लोकी में भक्ति से होने वाले फल का वर्णन है–

तैलधारावत् सतत प्रवाहित होने वाली प्रीतिरूपा भक्ति से श्रीसीतारामचन्द्रजी का प्रत्यक्ष होता है। पूर्व में भक्ति स्मरणात्मिका होती है। सतत अभ्यास से भगवदनुग्रह द्वारा वह प्रत्यक्षात्मिका हो जाती है। इससे जगत् के जन्मादि के कर्ता, सर्वान्तर्यामी लोकोत्तर सौन्दर्य सम्पन्न, सम्पूर्ण त्याज्य गुणों के विरोधी, कल्याणकारण गुण समूहों के एकमात्र आश्रय प्रियतम श्रीसीतारामजी का प्रत्यक्ष दर्शन होने पर क्रियमाण और सञ्चित कर्म तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं – **क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे** (मुण्डकोपनिषत् २/२/८) प्रारब्धकर्म भोगकर नष्ट हो जाते हैं। इसके सभी कर्म विनष्ट होने पर भी वक्ष्यमाण ऊर्ध्वगति उपासना के प्रभाव से होती है। शरीरान्तकाल उपस्थित होने पर मनुष्य की वाग् इन्द्रिय मन में स्थित हो जाती है। इसलिए वह सम्मुख उपस्थितजनों को देखते रहने पर भी बोलने में असमर्थ हो जाता है। तत्पश्चात शेष नौ इन्द्रियाँ भी मन में स्थित हो जाती है। मन का प्राण में संयोग होने से पहले एक स्मरण होता है, इसे ही अन्तिम स्मरण कहते हैं, जिस प्रकार दीपके बुझने से पहले उससे एक लम्बी ज्वाला निकलती है। उस ज्वाला के बुझते ही दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार मरणकाल उपस्थित होने पर मन से एक स्मृति होती है। उस स्मृति के नष्ट होते ही मन प्राण में मिल जाता है। अन्तिम स्मरण काल में जीव जिसे स्मरण करता है उसी को प्राप्त होता है, इसलिए उपासक उपास्य प्रभु के अनुग्रह से अन्तिम समय में उन्हीं का स्मरण करता है। ''**अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्, यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः। यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्, तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।**''

(गीता ८/५/६)

श्रीभगवान् सभी इन्द्रियों से संयुक्त मन को प्राण से संयुक्त कर देते हैं। अब देहत्याग के समय होने वाली पीड़ा पूर्णतः निवृत्त हो जाती हैं। मन सहित एकादश इन्द्रियों से युक्त प्राण को जीव से मिला देते हैं। इन्द्रिय तथा प्राण से युक्त जीव के साथ सूक्ष्म पञ्चभूतों को मिला देते हैं। हृदय में अन्तर्यामी रूपमें स्थित श्रीराम इन्द्रिय, प्राण और जीव से संयुक्त पञ्चभूतों को अपने में मिला लेते हैं। जीव चाहे स्वर्ग जाने वाला हो या नरक जाने वाला हो। यहाँ तक उल्लिखित लय क्रम समान ही है। अन्तिम स्मृति के अनुसार देह से निकलने में भेद है।

शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ विद्यमान हैं। इनमें १०१ नाड़ियाँ प्रधान हैं। इनमें से १०० नाड़ियाँ हृदय से इधर-उधर फैली हुई हैं। ये जीव को स्वर्ग और नरक आदि स्थानों में जाने के लिए मार्ग हैं। एक प्रधान नाड़ी हृदय से मूर्धा की ओर जाती है। यह शिर के ऊपरी भाग की ओर पहुँचती है। इसका नाम मूर्धन्य नाड़ी, सुषुम्ना नाड़ी और ब्रह्मनाड़ी है। जिस प्रकार चोरी करने वाले पकड़े जाने के भय से नगर के राजमार्ग से न जाकर गलियों से गुजरते हैं। उसी प्रकार श्रीभगवान् के परमधन जीवात्मा को स्वतन्त्र माननारूप चोरी करने वाले, उनके प्रति अपना समर्पण न करने वाले, सांसारिक भोग पदार्थों का संग्रह करने वाले, अहन्ता ममता से ग्रस्त अज्ञानी जीव शरीर में स्थित राजमार्ग के समान सुषुम्ना से न जाकर अन्य नाड़ियों से बाहर निकल जाते हैं। सुषुम्ना का हृदय में स्थित मुख भाग मोक्ष प्राप्ति का द्वार है। इन्द्रिय प्राण और जीव से संयुक्त सूक्ष्मभूतों को अपने में मिलाने के बाद श्रीभगवान् इस नाड़ी को प्रकाशित कर देते हैं। सूर्य की किरणों का सम्बन्ध इस नाड़ी के साथ है। इन किरणों को ही छान्दोग्योपनिषत् के मन्त्र **'तेऽर्चिषमभिसंभवन्ति'** ५-१-१० में अर्चिस् शब्द और गीता के

श्लोक **''अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्''** (गीता ८/२४) में अग्नि शब्द से कहा गया है। श्रीरामजी जीव का सम्बन्ध ा इन किरणों से करा देते हैं। श्रीभगवान् सूक्ष्मशरीर सहित जीव का उस नाड़ी में प्रवेश करा देते हैं। उसके द्वारा सूक्ष्म शरीर सहित जीव को ब्रह्मरन्ध्र में लाकर फिर वे सूक्ष्म शरीर के सहित उस जीव को लेकर उस प्रकार शरीर से बाहर निकलते हैं, जिस प्रकार कोई महापुरुष मलमूत्रसे पूर्ण नाले में प्रवाहित होने वाले बच्चे को उस नाले में कूदकर साथ लेकर बाहर निकले। अर्चिस्, दिवस, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, संवत्सर इनके अभिमानी देवताओं तथा वायु देवता से सम्मानित होकर इनके द्वारा अपनी-अपनी सीमा तक पहुँचाया जाता है।

इसके बाद वह आदित्य मण्डल को जाता है। आदित्य देवता उसको सम्मान देते हैं। वह आदित्य मण्डल का भेदन करके चन्द्रमण्डल में जाकर उसका भी भेदन करता है। आदित्य मण्डल और चन्द्रमण्डल के भेदन का वर्णन बृहदारण्यकोपनिषत् ६/१०/१ में किया गया है। इसके बाद विद्युत्संज्ञक अमानवपुरुष जीव को लेने के लिए आते हैं। उनके साथ ही यह क्रमशः वरुण, इन्द्र और प्रजापति के लोकों में जाता है। प्रजापति देवता सत्यलोक में निवास करते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा ही प्रजापति हैं। अर्चिस् देवता से लेकर प्रजापति पर्यन्त सभी देवता अपनी सीमा के आरम्भ में आकर इस जीवात्मा का स्वागत करते हैं और अपनी सीमा की समाप्ति पर्यन्त साथ ले जाकर अपने से उच्च देवता को सौंप देते हैं। ये देवता भगवद्धाम जाने वाली आत्मा का उसी प्रकार स्वागत करते हैं, जिस प्रकार राज्य के कर्मचारी राजा का स्वागत करते हैं। यह सबके साथ सम्मानित होकर उनके साथ सम्भाषण करता हुआ प्रजापति लोक तक आ जाता है। यहाँ तक प्रकृति मण्डल है।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

(गीता ८/१६)

स्वामी रामानन्दाचार्य ने गीता भाष्य में आब्रह्मभुवनाल्लोकाः का अर्थ चतुर्मुखलोकमभिव्याप्यलोकाः किया है। हे अर्जुन! ब्रह्मा के सत्यलोक पर्यन्त सभी लोक विनाशी हैं किन्तु हे कौन्तेय! मुझे प्राप्त करके जीव का पुनर्जन्म नहीं होता है। सकाम कर्मों से प्राप्त होने वाले ये लोक विनाशी हैं। भक्ति से प्राप्त होने वाला अप्राकृतधाम अविनाशी है। इसे साकेत परमव्योम और दिव्य अयोध्या कहा जाता है। कुण्ठा (निराशा) रहित होने से इसको वैकुण्ठ भी कहते हैं। प्रकृति मण्डल और अप्राकृत साकेत धाम के मध्य में विरजा नदी प्रवाहित होती रहती है। प्रजापति के पास पहुँचा हुआ भक्त इस प्रकृति मण्डल का त्याग करके विरजा नदी में आता है। इसका जल शीतल, निर्मल, सुगन्धित तथा मधुर है। जीव इसमें गोता लगाकर स्नान करता है। अनादि काल से दुःखमय संसार में परिभ्रमण करने के कारण होने वाला खेद इस स्नान से निवृत्त हो जाता है। जीव के साथ विद्यमान सूक्ष्म शरीर प्रकृति का कार्य है, पुण्य-पापरूप कर्मों के कारण प्राप्त हुआ है। विरजा स्नान करने पर ऊर्ध्वलोक में जाने की सूक्ष्म वासना सहित सूक्ष्म शरीर का परित्याग हो जाता है। विरजा नदी के पार वैद्युत संज्ञक अमानव पुरुष इस मुक्तात्मा का स्पर्श करते हैं। इनके स्पर्श से शेष अज्ञान भी नष्ट हो जाता है और मुक्तात्मा को अप्राकृत शुद्ध सत्त्वमय दिव्य शरीर की प्राप्ति हो जाती है। प्रजापति पर्यन्त सभी आतिवाहिक गण जीव हैं। ये कर्मों से देवता बनते हैं किन्तु अमानवरूपमें साक्षात् भगवान् ही मुक्तात्मा को लेने आते हैं, अतः उनके स्पर्श से कारण देह अज्ञान का नाश तथा दिव्य देह की प्राप्ति होना उचित ही है। इस प्रकार वासनासहित सूक्ष्म और कारण शरीर का परित्याग कर, निर्मल होकर, दिव्य देह को धारण करके अतिवेग से विरजा नदी के समीपवर्ती स्थानों का अतिक्रमण करके अप्राकृत साकेत को प्राप्त करके वहाँ राजमार्ग के द्वारा सप्तावरणों से युक्त नाना प्रकार के

बहुमूल्य रत्नों से सुशोभित अलौकिक श्रीराम जी के शुभ भवन में प्रवेश करता है। वहाँ कनक भवन नामक स्वर्णमय प्रासाद है। उसके मध्य में कल्पवृक्ष के नीचे स्वर्णमय महामण्डप है। उसके मध्य में रत्नसिंहासन है। इस सिंहासन के मध्य में कमल है। उसकी मध्य कर्णिका पर सुसज्जित मणिमय आसन है। इस पर श्रीभरतादि के द्वारा सदासेवित पराम्बा भगवती सीता के सहित सर्वसुखप्रद श्रीरामचन्द्र जी विराजमान हैं। धनुष, बाण आदि दिव्य आयुधों से युक्त श्रीमद् राघवेन्द्र सरकार अत्यन्त प्रकाशमान किरीट, मुकुट, चूड़ामणि, मकरकुण्डल, कण्ठहार, भुजबन्ध, कंगन, श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, मुक्तादाम, उदरबन्ध, पीताम्बर, करधनी, तथा नूपुर आदि दिव्य भूषणों से युक्त हैं। मुक्तात्मा को यहाँ तक आने पर श्रीहनुमान जी और श्रीसीता जी के द्वारा परात्पर प्रभु के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। वह प्रभु के युगल चरणों में साष्टाङ्ग प्रणिपात करता है। जिस प्रकार भगवान् श्रीराम ने वनवास की अवधि पूर्ण होने के पश्चात् अयोध्या आने पर अपनी गोद में भरत को बैठाकर बड़े हर्ष के साथ उनका आलिङ्गन किया था, उसी प्रकार वे मुक्तात्मा को अपनी गोद में बैठाकर उसका बड़े हर्ष के साथ आलिङ्गन करते हैं और दोनों के मध्य विविध संवाद होते हैं।

अपहतपाप्मत्व (पापरहितत्व), विजरत्व (जरारहितत्व), विमृत्युत्व (मृत्युरहितत्व), विशोकत्व (शोकरहितत्व), विजिघत्सत्व (क्षुधारहितत्व), अपिपासत्व (पिपासारहितत्व), सत्यकामत्व और सत्यसंकल्पत्व (अप्रतिहतसंकल्प) इन आठ गुणों को गुणाष्टक कहा जाता है। ये जीव और ब्रह्म दोनों के ही स्वाभाविक गुण हैं। ब्रह्म और जीव के इन गुणों का कथन छान्दोग्योपनिषत् में क्रमशः ८/१/५ और ८/७/१ में है। परमात्मा की आनन्दरूपता तथा ये गुण सदा आविर्भूत रहते हैं किन्तु बद्धावस्था में जीव की आनन्दरूपता और ये गुण तिरोहित हो जाते हैं। साकेत में श्रीभगवान् के कृपाकटाक्ष से मुक्तावस्था में ये सभी आविर्भूत हो जाते हैं। ये गुणाष्टक प्रियतम

के कैंकर्य में उपयोगी होते हैं। धाम में आविर्भूत गुणाष्टक से युक्त होकर परमानन्दमय होकर प्रियतम प्रभु का दर्शन एवं कैंकर्य करते हुए रहना ही मोक्ष है, इसे ही फल कहा जाता है। इस प्रकार दर्शन एवं कैंकर्य करते हुए रहने वाला मुक्त कहा जाता है। सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य के भेद से मोक्ष चार प्रकार का होता है। विरजा पार करके भगवान् के लोक को प्राप्त करना सालोक्य मुक्ति है। इसके बाद अपने आराध्य के समान अमृतमय, अद्भुत अप्राकृत शरीर को धारण करना सारूप्य मुक्ति है। फिर भगवान् के समीप पहुँचना सामीप्य मुक्ति है। युज्यते इति युक् इस व्युत्पत्ति के अनुसार सम्बन्ध रखने वाले गुण युक् कहे जाते हैं। जिनके युक् समान हों वे सयुज् कहे जाते हैं। सयुजः भावः सायुज्यम् अर्थात् भगवान् के समान गुण वाला होना सायुज्य है। अर्थात् श्रीभगवान् के सदृश आविर्भूत हुए गुणाष्टक से युक्त होकर उनका दर्शन एवं सेवा करना सायुज्य मोक्ष है।

'द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः' (ब्रह्मसूत्र ४/४/१२) के अनुसार भगवद् धाम में रहने वाले मुक्त जीव शरीर युक्त तथा शरीररहित दोनों प्रकार के होते हैं। मुक्त जीव को दर्शन करने के लिए शरीर, इन्द्रिय की अपेक्षा नहीं होती है। उसका ज्ञान इन्द्रियनिरपेक्ष होता है। बद्धजीव का ही ज्ञान इन्द्रिय सापेक्ष होता है। दिव्य धाम में भी भगवत्कैंकर्य देह के विना नहीं हो सकता है। श्रीभगवान् को अङ्गराग लगाना, पुष्पहार अर्पित करना, चमर करना आदि सेवाओं के लिए शरीर प्राप्त होता है।

जीव आवागमन से रहित, इस दिव्य धाम से आकर संसार में बन्धन को प्राप्त नहीं होता है– **न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते** (छान्दोग्योपनिषत् ८/१५/१) **अनावृत्तिःशब्दात् अनावृत्तिः शब्दात्** (ब्रह्मसूत्र ४/४/४)

शंका – भगवान् के द्वारपाल जय और विजय की उनके

धाम से वापस आने की बात प्रसिद्ध है। ऐसा होने पर उक्त शास्त्र वचनों की क्या संगति होगी ?

समाधान – श्रीभगवान् के धाम दो प्रकार के हैं – प्राकृत और अप्राकृत। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्य इस प्रकार वर्णित सातवाँ सत्यलोक भी श्रीभगवान् का धाम है। यह प्राकृत है, इसकी उत्पत्ति और विनाश होते हैं। प्रकृति मण्डलसे पर अप्राकृत धाम है। यह उत्पत्ति और विनाशसे रहित है। जिन उपासकोंको इस लोकमें परमात्मसाक्षात्कार नहीं होता है। वे सत्यलोकाख्य भगवद्धाममें जाकर उपासना करते हैं। जिनको वहाँ उपासनासे साक्षात्कार हो जाता है। वे अप्राकृत धामको चले जाते हैं। वहाँ मुक्त आत्माओं के क्रोध और शापादि संभव ही नहीं हैं। इन मुक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता है। उक्त शास्त्र वचन इसी अप्राकृत लोकसे सम्बन्धित हैं। भगवान्की इच्छासे भगवान्के अवतार लेने पर अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिए भगवान् के अवतार के समान मुक्तात्माओं का अवतार होता है। यदि किसीको सत्यलोक में भी साक्षात्कार नहीं होता है, तो वे इस पृथ्वी पर आते हैं। जय और विजय इसी भगवद्धाम में थे, इसलिए वापस आये।

प्राप्ति के विरोधी

अनात्मन्यात्मबुद्धिस्तुस्वात्मशेषित्वभावना ।
भगवद्दास्यवैमुख्यं तदाज्ञोल्लंघनं तथा ।।१९।।
ब्रह्मेशेन्द्रादिदेवानामर्चनं वन्दनादिकम् ।
असच्छास्त्राभिलाषश्चसच्छास्त्रस्यावमाननम् ।।२०।।
मर्त्यसामान्यभावेन गुर्वादौ नातिगौरवम् ।
स्वातन्त्र्यं चाप्यहंकारो ममकारस्तथैव च ।।२१।।
द्वादशीविमुखत्वं च ह्यकृत्यकरणं तथा ।
ज्ञेयं विरोधिरूपं तु स्वस्वरूपस्य सर्वदा ।।२२।।

अर्थ– अनात्मा में आत्मबुद्धि करना, अपने को शेषी

समझना, श्रीभगवान् के प्रति दासभाव से विमुख रहना, श्रीभगवान् की आज्ञा का उल्लंघन करना, ब्रह्मा-शिव तथा इन्द्रादि देवताओं की अर्चना और वन्दनादि करना, असत् शास्त्रों की अभिलाषा करना, सत् शास्त्रों की अवहेलना करना, सामान्य मनुष्यभाव करके श्रीगुरु आदि में अति गौरव न करना, अपनी स्वतन्त्रता, अहन्ता-ममता, एकादशी-उपवास से विमुख रहना तथा शास्त्र निषिद्ध कर्मों को करना ये सभी सर्वकाल में अपने अन्तर्यामी ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति के विरोधी हैं। इन सबको जानना चाहिए।

व्याख्या – भगवत्प्राप्ति के विरोधी स्वरूपों का वर्णन किया जाता है – अनात्मा को आत्मा समझना भ्रम है। अनात्मा का अर्थ है – आत्मा से भिन्न देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि। ये अनात्मा हैं। इनको आत्मा समझना भ्रान्ति है। यह भगवत्प्राप्ति की विरोधी है। श्रीभगवान् ही सम्पूर्ण जगत् के शेषी हैं। जीव भी उनका शेष है। जीव किसी का भी स्वाभाविक शेषी नहीं है। ऐसी वस्तु स्थिति होने पर भी यदि कोई साधक अपने को किसी पदार्थ का शेषी (स्वामी) मानता है, तो यह उसकी भ्रान्ति है। यह प्राप्ति का विरोधी है। जीव श्रीभगवान् का स्वाभाविक दास है। उसके धर्म को दासत्व या दास्य कहते हैं। जीव वेतन के निमित्त से किसी राजा का दास बनता है। राजा के प्रति इसका दासत्व स्वाभाविक नहीं है। वेतन के निमित्त से है। निमित्त (उपाधि) न रहने से राजा के प्रति दासत्व निवृत्त हो जाता है किन्तु श्रीभगवान् के प्रति इसका दासत्व कभी भी निवृत्त नहीं होता है क्योंकि यह स्वाभाविक है। श्रीभगवान् के प्रति अपने दासभाव को स्वीकार न करना प्राप्ति का विरोधी है। चेतन और अचेतन दोनों का साधारण धर्म शेषत्व है। दासत्व तो केवल चेतन का धर्म है। यही शेषत्व और दासत्व में भेद है। जीव अपने दासत्व गुण को ठीक से न जानने के कारण अपने स्वाभाविक स्वामी

श्रीभगवान् से प्रीति न करके जगत् से प्रीति करता है। जीव जब गुरु के उपदेश से अपने दासभाव को जानता है तब उसकी सांसारिक पदार्थों से प्रीति छूट जाती है। श्रीभगवान्, गुरुदेव भगवान् तथा भगवद्भक्तों की आज्ञा का उल्लंघन करना भगवत्प्राप्ति का विरोधी है।

ब्रह्मा आदि देवता जीवकोटि के अन्तर्गत हैं। ये सभी शरीर हैं। श्रीभगवान् इनके शरीरी हैं। जिस प्रकार शरीर में पुष्पमाला पहनाने वस्त्र धारण कराने से शरीर में रहने वाली आत्मा (जीवात्मा) प्रसन्न होती है, उसी प्रकार श्रीराम जी के शरीर ब्रह्मा आदि की अर्चना, वन्दना करने पर उनमें रहने वाले शरीरी परमात्मा प्रसन्न होते हैं। सभी देवताओं के स्वामी श्रीराम जी हैं। देवताओं के अर्चन, वन्दन आदि के द्वारा श्रीराम जी का अर्चन, वन्दन किया जाता है। ऐसी वैदिकसिद्धान्तानुसार व्यवस्था है। इसी के अनुसार वैदिक कर्मों में देवताओं की अर्चना का विधान है। जो उक्त सिद्धान्त से अनभिज्ञ है और ब्रह्मा आदि को स्वतन्त्र मानकर उनकी अर्चना आदि करते हैं। वह अर्चना आदि भगवत्प्राप्ति की विरोधी है। श्रीभगवान् की साक्षात् अर्चना की जाती है और देवताओं के द्वारा भी उनकी अर्चना की जाती है, क्योंकि वे सबकी आत्मा हैं। **सब मानिअहिं राम के नाते** (मानस २/७३/७) श्रीभगवान् के नाम, स्वरूप, गुण, विग्रह, लीला और विभूति के निरूपक शास्त्र सत् शास्त्र हैं। इनसे भिन्न असत् शास्त्र हैं। इनके अध्ययन की अभिलाषा भी भगवत् प्राप्ति का विरोधी कार्य है। सत् शास्त्रों की अवमानना का अर्थ है – सत्शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार न चलना। यह भी प्राप्ति का विरोधी है। श्रीगुरुदेव भगवान हैं, उनके अनुग्रह से भगवत्प्राप्ति होती है, इसलिए उनसे बड़ा कोई नहीं है।

इस प्रकार गुरु के प्रति अति गौरव होना चाहिए। ऐसा होने पर शिष्य उनकी आज्ञा के अनुसरण को अपना पुनीत कर्तव्य समझता है। 'गुर्वादौ' यहाँ आदि पद से श्रेष्ठजनों को ग्रहण करना चाहिए। उनके प्रति भी अति गौरव रखना चाहिए। गुरुदेव भगवान् को सामान्य मनुष्य समझकर उनके प्रति अति गौरव न करना भगवत्प्राप्ति का विरोधी है। जीव स्वतन्त्र नहीं है, श्रीराम के अधीन ही है। ईश्वराधीन अपनी आत्मा को स्वतन्त्र मानना भ्रम है। यह प्राप्ति का विरोधी है। अहंकार का घमण्ड अर्थ है। यह भी प्राप्ति का विरोधी है। देह, निवास स्थान आदि में ममता रहते आराध्य में प्रीति नहीं हो सकती है। अतः ममता भी उनकी प्राप्ति की विरोधी है। द्वादशीविमुखत्व का लक्षणा से अर्थ है – एकादशीविमुखत्व। श्रीवैष्णव दशमी तिथि के वेध से रहित तथा द्वादशी से युक्त होने पर भी एकादशी में उपवास करते हैं, इसलिए मूल ग्रन्थ में एकादशी के लिए द्वादशी पद आया है। एकादशी को उपवास करके द्वादशी को श्रीभगवान् की पूजा की जाती है। ऐसा न करना भी प्राप्ति का विरोध ी है। शास्त्र जिन कर्मों का निषेध करते हैं। उनको करना अकृत्यकरण कहा जाता है। इसका अर्थ है – निषिद्ध कर्म। असत्य भाषण, छल, चोरी, बेईमानी, घूसखोरी, व्यापार में मिलावट, अन्याय से अर्जित धन का उपभोग करना, उसका दान करना, सामर्थ्य होने पर भी जरूरतमन्द की सेवा न करना, गांजा-भांग, बीड़ी, सिगरेट का सेवन करना इत्यादि निषिद्ध कर्म हैं। ये भगवत्प्राप्ति के विरोधी हैं। उपर्युक्त सभी कर्म अपने आराध्य स्वरूप श्रीराम की प्राप्ति के सर्वदा विरोधी हैं। इनको जानना चाहिए। जिज्ञासु भक्त इनको जानकर इनका आचरण करना दृढ़ता से छोड़ दें। प्राप्ति के साधन आचरण करने के लिए ज्ञेय (जानने योग्य) हैं और प्राप्ति के विरोध

ी त्याग करने के लिए ज्ञेय हैं।

श्रीहनुमान् जी महाराज महर्षि अगस्त्य के द्वारा ग्रन्थ के आरम्भ में किये गये **'कथं श्रीरामे सम्प्रीतिर्जायते पवनात्मज'** इस प्रश्न के उत्तर का उपसंहार करते हैं –

एवं तत्त्वपरिज्ञानादाचार्यानुग्रहेण हि।
तत्क्षणाज्जानकीनाथे प्रीतिर्नित्याभिजायते।।२३।।

अर्थ – इस प्रकार महान् आचार्य के अनुग्रह से उक्त प्राप्य आदि पाँचों तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने से उसी क्षण श्रीजानकी नाथ में नित्य प्रीति हो जाती है।

व्याख्या – श्रद्धा, भक्ति और शुश्रूषा के बिना आचार्य से प्राप्त किया गया ज्ञान भगवत्प्राप्ति का साधन नहीं होता है। अतः श्रद्धा, भक्ति और शुश्रूषा-पूर्वक आचार्य से पाँचों तत्वों को जानकर उनका मनन करना चाहिए। तदनन्तर उनके अनुसार आचरण करना चाहिए। ऐसा करने पर श्रीभगवान् के प्रति होने वाली नित्य प्रीति भवसागर से पार करके उनके श्रीचरणों की प्राप्ति कराती है। नित्य प्रीति का अर्थ है – सदा रहने वाली भक्ति। मुक्तावस्था में तो भक्ति की अबाधित स्फूर्ति बनी रहती है।

अर्थपञ्चक की व्याख्या समाप्त।

तत्वत्रय

प्रस्तुत तत्वत्रय भगवान् रामानन्दाचार्यजीकी अमरकृति श्री वैष्णवमताब्जभास्कर ग्रन्थसे लिया गया है। स्वामी सुरसुरानन्द जीके प्रथम प्रश्नका आचार्यचरण उत्तर देते हैं –

प्रकृति (अचित्)

पृष्टानामेकमाद्यं त्रिकमपि श्रृणु तद्भेदतो नामभेदै–
र्नित्याऽज्ञाऽचेतना साप्रकृतिरविकृतिर्विश्वयोनिश्शुभैका।
नानावर्णात्मिकाऽजा त्रिगुणसुनिलयाऽव्यक्तशब्दाभिधेया।
निर्व्यापारा परार्था महदहमितिसूरुच्यते तत्त्वविद्भिः।।१।।

अर्थ – आपके द्वारा किये गये प्रश्नोंमें प्रथम प्रश्नका उत्तर सुनिये – तत्व एक ही है, वही अर्थके भेदसे और नामके भेदसे त्रिक भी कहा जाता है। उन तीनोंमें प्रथम जो अचित् तत्त्व है। प्रकृति नाम वाला वह तत्त्व नित्य, अज, अचेतन, अविकृति, सम्पूर्ण जगत्का कारण, शुभ तथा एक है। अव्यक्त शब्दकी वाच्य वह प्रकृति नानावर्णवाली, अजन्मा, तीनों गुणोंकी आधार, निर्व्यापार तथा परार्थ है। वह महद्, अहंकार आदि कार्यों को उत्पन्न करने वाली है। ऐसा तत्वतेत्ताओंके द्वारा कहा जाता है।

व्याख्या – श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण और आगमके द्वारा प्रतिपादित एक ही तत्त्व परब्रह्म श्रीरामचन्द्र हैं। वे चेतन जीव और अचेतन प्रकृतिसे विशिष्ट अद्वैत तत्त्व है। जिस प्रकार दण्ड और कुण्डल इन दो विशेषणोंसे विशिष्ट देवदत्त एक ही होता है। उसी प्रकार जीव और प्रकृतिसे विशिष्ट ब्रह्मतत्त्व एक ही है। यहाँ पर एक शब्दका प्रयोग उक्त विशेषणद्वयसे विशिष्ट वस्तुके लिए है। अर्थात् त्रिक (तीनका समुदाय अर्थात् दो विशेषण और एक विशेष्य)के लिए हैं। चित् (जीव), अचित् (प्रकृति) और ब्रह्म ये तीन

तत्त्व (अर्थ) हैं। इनमें चिद् और अचित् ब्रह्मके विशेषण हैं। ब्रह्म विशेष्य है। ये कभी भी ब्रह्मस्वरूपसे पृथक नहीं रहते हैं। इसलिए ये अपृथक सिद्ध विशेषण कहलाते हैं। दो विशेषणोंसे विशिष्ट ब्रह्म एक ही है। अतः एक तत्त्व है, अथवा तीन तत्त्व हैं। इन दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है। सांख्य सिद्धान्तमें प्रकृति स्वतन्त्र तत्त्व है, किन्तु वेदान्त सिद्धान्तमें यह ईश्वरसे अधिष्ठित है।

जायते इति जा – जिसकी उत्पत्ति होती है, वह जा कहलाती है। प्रकृति की उत्पत्ति न होनेसे यह अजा कही जाती है। उत्पत्ति न होनेसे यह अनादि कही जाती है – **प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि** (गीता १३-१९)। **गौरनाद्यन्तवती** (मन्त्रिकोपनिषत् – ४) प्रकृति अनादि (उत्पत्तिसे रहित) और अनन्त (विनाशसे रहित) है। यह उत्पत्ति और विनाशसे रहित होनेके कारण नित्या है। सदा विद्यमान रहने वालेको नित्य कहते हैं। जीव और ईश्वर भी नित्य हैं। ईश्वर सर्वथा अपरिणामी है। जीव स्वरूपका कोई परिणाम नहीं होता है, किन्तु उसके गुणों का बद्धावस्था में परिणाम होता है। प्रकृतिका स्वरूपतः महद् आदि रूपोंमें परिणाम होता है। अतः जीव और ईश्वर कूटस्थ नित्य कहे जाते हैं तथा प्रकृति परिणामी नित्य कही जाती है। जानाति इति ज्ञः। ज्ञानके अधिकरण (जानने वाले)को ज्ञ कहते हैं। आत्मा ज्ञ होती है। उससे भिन्न जड़ प्रकृति अज्ञा है। स्वयं प्रकाशको चेतन कहते हैं। जीव और ईश्वर ये दोनों स्वयं प्रकाश है, इसलिए चेतन कहे जाते हैं। इन दोनोंसे भिन्न परप्रकाश जड़ प्रकृति अचेतन कही जाती है। महद्, अहंकार, पञ्चतन्मात्राएं एकादशेन्द्रियां, पञ्चभूत ये तेईस अचित् के कार्य हैं। इनका कारण होनेसे अचित्को प्रकृति कहा जाता है। कार्यको विकृति कहते हैं, उससे भिन्न कारणको अविकृति कहते हैं। यह महद् आदिका कारण है, इसलिए अविकृति कही जाती है। विश्वयोनिका अर्थ है – सम्पूर्ण जगत्की कारण। श्रीभगवान्की विभूति होनेसे यह शुभ ही है। संसारावस्थामें अज्ञानके

कारण यह कभी अशुभ भी प्रतीत होती है। कार्य अनेक हैं, उन सबकी कारण प्रकृति एक ही है। कार्य जगत्में दिखाई देने वाले नाना वर्ण (रंग) प्रकृतिके हैं क्योंकि कारण ही कार्यरूपसे स्थित होता है। यह प्रकृति सृष्टि कालमें स्थूल हो जाती है, और प्रलयकालमें सूक्ष्म हो जाती है। यह सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंका आश्रय है। जब प्रकृति कार्यरूपमें व्यक्त नहीं होती है। तब अव्यक्त कही जाती है। क्रियाको व्यापार कहा जाता है। ईश्वर ही जगत्की सृष्टि आदि व्यापारोंको करते हैं। प्रकृति अचेतन होनेसे कुछ नहीं करती है। इसलिए निर्व्यापारा कही गयी है। यह परार्थ अर्थात् परके प्रयोजन (उपयोग)के लिए ही है। इसका अपने लिए कोई प्रयोजन नहीं है। यह श्रीभगवान्की लीलाकी सहायिका है। उनके लीला रूप प्रयोजनके लिए है। जीवके कर्मफलभोग और मोक्षरूप प्रयोजन के लिए है। प्रकृति देह, इन्द्रिय और विषयके रूपमें परिणत होकर जीवके कर्मफल भोग में हेतु बनती है। संसारबन्धनसे सर्वथा रहित होकर श्रीभगवान्को प्राप्त करना ही मोक्ष है। श्रीभगवान्को प्राप्त करनेके लिए साधना देह, इन्द्रिय आदिके विना सम्भव नहीं है। अतः उन रूपोंमें प्रकृति मोक्षका भी हेतु बनती है। 'महदहमितिसूः' यह महत् अहंकार, पञ्चतन्मात्राओं, एकादश इन्द्रियां और पञ्चभूतोंको उत्पन्न करने वाली है।

जीवात्मा (चित्)

नित्यो ज्ञश्चेतनोऽजः सततपरवशः सूक्ष्मतोऽत्यन्तसूक्ष्मः।
भिन्नो बद्धादिभेदैःप्रतिकुणपमसौ नैकधा सूरिवर्य्यैः।।
श्रीशाक्रान्तालयस्थो निजकृतिफलभुक् तत्सहायोऽभिमानी।
जीवः सम्प्रोच्यते श्रीरघुपतिसुमते! तत्वजिज्ञासुवेद्यः।। २।।

अर्थ – हे श्रीरघुनाथजीमें आसक्त सुन्दर मति वाले सुरसुरानन्द! जीवात्मा अभिमानको करने वाला, स्वकृत कर्मोंके फलको भोगने वाला, श्रीरामचन्द्रके निवास स्थान शरीरमें उनके साथ

रहने वाला है। वह बद्ध आदि भेदोंसे विभिन्न प्रकारका है। प्रत्येक शरीरमें एक ही जीवात्मा विद्यमान नहीं है। जीवात्मा नित्य, ज्ञाता, चेतन, अजन्मा सदा ईश्वरके अधीन और उनका सेवक है। सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म है। उक्त स्वरूप वाला जीव तत्त्व जिज्ञासुओंके द्वारा वेद्य है। ऐसा विद्वज्जनोंके द्वारा कहा जाता है।

व्याख्या – देहात्मबुद्धिको अभिमान और इसे करने वाले जीवको अभिमानी कहते हैं। यह देहादिसे भिन्न है। तथापि अज्ञानके कारण देहको ही आत्मा समझता है। यह अपने किए हुए शुभ और अशुभ कर्मोंके फलको भोगने वाला है।

अथ यदिदम् अस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म।

(छान्दोग्योपनिषत् ८-१-१)

अथास्मिन्ब्रह्मपुरे ब्रह्मणः पुरं नगरम्। तस्मिन् शरीरे नवद्वारादिमति। इदं च शरीरमुपास्यतया संनिहितस्य रामाख्यपरमात्मनः स्थानं पुरमिव पुरम्। तस्य ब्रह्मणः शरीराख्यपुरे दहरमत्यल्पं पुण्डरीकं कमलं तदिदं हृदयाख्यं वेश्म वेश्मवत् वेश्म।

(आनन्द भाष्य ८/१/१)

नवद्वारों वाला यह शरीर श्रीभगवान्का पुर अर्थात् नगर है। इसमें अत्यल्प कमलाकार हृदय है। **द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते** (मुण्डकोपनिषत् ३/१/१) सयुजा – अपहतपाप्मत्व आदि गुणोंसे परस्पर समान, सखाया – परस्पर साथ रहने वाले, द्वा सुपर्णा – पक्षीके समान जीव और ईश्वर दोनों, समानं वृक्षं परिषस्वजाते – एक शरीर रूप वृक्ष पर रहते हैं। शरीरमें जो हृदय है। उसमें जीव और उसके परम सुहृद श्रीरामजी साथ ही रहते हैं।

जीवके तीन भेद हैं – बद्ध, मुक्त और नित्य। जिनको कभी भी बन्धन नहीं हुआ है, वे अनादिकालसे अप्राकृत धाममें श्रीभगवान्के

दर्शन और उनकी सेवामें संलग्न जीव नित्य कहलाते हैं। उपासना करके जो सतत दर्शन और सेवाके लिए दिव्य धाम चले गये हैं, वे मुक्त कहलाते हैं। संसारी जीवोंको बद्ध कहा जाता है। इनमें कोई बुभुक्षु हैं, कोई मुमुक्षु। सभी आत्माओंका एक ज्ञानत्व आकार है। आकार एक होने पर भी वे एक नहीं हैं, बल्कि स्वरूपतः भिन्न हैं। जैसे सभी गायोंका गोत्व एक आकार होने पर भी वे भिन्न हैं। वैसे ही सभी आत्माएं भिन्न हैं। मुक्त और नित्य आत्माएं स्वरूपतः ही भिन्न हैं, इनका और कोई भेदक नहीं है किन्तु बद्ध आत्माओंमें स्वरूपतः भेदके साथ ही उनके औपाधिक (कर्म उपाधि से होने वाले) गुण भी भेदक हैं। जैसे कोई सुखी है, कोई दुःखी है। कोई किसी विषयको जानता है, कोई उसे नहीं जानता है। अतः प्रत्येक शरीरमें विद्यमान जीवात्मा एक नहीं है।

जीवात्मा नित्य है। '**नित्यो नित्यानाम्**' (कठोपनिषत्) जो नित्योंमें नित्य है। यहां 'नित्यानाम' पदसे जीवात्माओंको नित्य कहा जाता है। जीवात्मा ज्ञाता अर्थात् ज्ञानका आश्रय है। इस अर्थका प्रतिपादक **'ज्ञोऽत एव'** यह ब्रह्मसूत्र है। चेतनका अर्थ है, स्वप्रकाश। ज्ञान स्वप्रकाश होता है। अतः चेतन पदके द्वारा आत्माकी ज्ञानरूपता कही गयी है। जैसे अन्धकारमें घटादिको जाननेके लिए दीपक अपेक्षित होता है किन्तु दीपकको जानने के लिए अन्य दीपक अपेक्षित नहीं होता है। वैसे ही आत्माको जानने के लिए अन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रहती है, अतः यह आत्मा स्वयं प्रकाश कही जाती है।

शरीरका ही जन्म होता है, आत्माका नहीं। इस कारण आत्माको अज कहा जाता है। यह सर्वदा ईश्वरके अधीन ही है। स्वतन्त्र नहीं है। सहस्रों माता पिताओंसे भी बढ़कर प्यार करने वाले, परमकृपालु, ईश्वरके अधीन रहनेमें सुख ही सुख है। जीवको प्राप्त होने वाले दुःखोंकी कारण तो अज्ञानमूलक स्वतन्त्रता है।

जीवात्मा वस्तुतः भगवान्की ही सेवाके लिए है। सेवाका अर्थ है – आराधना। आराधना करने वालेको आराधक या सेवक कहते हैं। लोकमें दृश्यमान जो सूक्ष्म पदार्थ हैं। उन सबसे अति सूक्ष्म यह आत्मा है। प्रकृति, आत्मा और परब्रह्म श्रीराम ये तीन तत्त्व हैं। इनको जाननेकी इच्छा करने वाला तत्त्वजिज्ञासु है।

ब्रह्म विश्वं जातं यतोऽद्धा यदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते।
सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः।।
यद्भीत्या वाति वातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः।
साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्ता।।३।।

अर्थ – जिनसे जगत् वस्तुतः उत्पन्न होता है, जिनके द्वारा वस्तुतः स्थित (पालित या रक्षित) रहता है और प्रलयकालमें सम्पूर्ण जगत् वस्तुतः जिनमें लीन होता है। जिनके तेजसे सूर्य और चन्द्र सृष्टिके आरम्भसे लेकर अब तक इस संसारको प्रकाशित कर रहे हैं। जिनके भयसे वायु प्रवाहित होती है और जिनके भयसे यह पृथ्वी भी रसातलको नहीं जाती है। वे सर्वज्ञ, साक्षी, कूटस्थ, अनेक शुभगुणोंके आश्रय अव्यय, विश्वका भरण करने वाले एक ईश्वर श्रीमद्रामचन्द्र हैं।

व्याख्या – अद्धा शब्दके दो अर्थ होते हैं – १. वस्तुतः और २. साक्षात्। प्रथम अर्थको लेने पर सत्यसंकल्प और सर्वशक्तिमान श्रीभगवान्के द्वारा होने वाली जगत्की उत्पत्ति स्थिति और लय वास्तविक (सत्य) सिद्ध होते हैं। ये मिथ्या नहीं है। कुछ मायावादी विद्वान् जगतकी उत्पत्तिको सत्य नहीं मानते हैं। उनके अनुसार जगत्की उत्पत्ति आदि होती ही नहीं है। यह अज्ञानसे कल्पित है। उत्पत्ति आदि कल्पित होनेसे इन क्रियाओंका कर्म जगत् भी कल्पित है। **ब्रह्मसत्यं जगत् मिथ्या** (निर्विशेष चिन्मात्र ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या अर्थात् कल्पित है) यह इनका मत है। अद्धा शब्दका प्रथम अर्थ ग्रहण करने पर उक्त मतका निराकरण हो जाता है क्योंकि श्रुतियाँ ब्रह्मको जगत्का अभिन्ननिमित्त उपादान कारण कहती हैं।

जिन उपनिषदों पर आचार्योंने भाष्य लिखे हैं। उनमें कहीं भी अज्ञानको जगतका कारण नहीं कहा गया है। जगत्को कल्पित भी नहीं कहा है - **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म।** (तैत्तिरीयोपनिषत्) जिससे इन प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। उत्पन्न हुए प्राणी जिसके द्वारा जीवित रहते हैं। प्रयाणको प्राप्त होते हुए वे जिसमें लीन हो जाते हैं, उसकी जिज्ञासा करो, वह ब्रह्म है। यह श्रुति ब्रह्मसे जगतकी उत्पत्ति आदिका प्रतिपादन करती है। श्रुतिसिद्ध जगत्की उत्पत्ति आदि मिथ्या नहीं है। वे सत्य ही है। ब्रह्म (सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म) कारण है। जगत् (स्थूल चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म) कार्य है। इस प्रकार जगत और ब्रह्ममें कार्यकारण भाव है। वेदान्तमतमें कारण ही कार्यरूपताको प्राप्त होता है। इसलिए जगत् और ब्रह्मका अभेद है। **सच्च त्यच्च अभवत्** (तैत्तिरीयोपनिषत् ३/२/३०) सत्य परमात्मा (सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट) ही चेतनाऽचेतन जगत (स्थूलचिदचिद्विशिष्ट) रूप हो गया। **तदात्मानमेव स्वयमकुरुत**। (तैत्तिरीयोपनिषत् ३/२/३१) उस परमात्माने स्वयं अपनेको जगत् रूपमें किया। **'ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम् तत्सत्यम्'** (छान्दोग्योपनिषत् ६/८/७) यह जगत् ब्रह्मात्मक है, वह सत्य है। **रामः सत्य परं ब्रह्म रामात किञ्चिन न विद्यते। तस्माद् रामस्वरूपं हि सत्यं सत्यम् इदं जगत्।** (सनत्कुमार संहिता) परब्रह्म श्रीराम सत्य हैं, उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। इसलिए रामरूप यह जगत् सत्य है, सत्य है। इन शास्त्रवचनोंसे जगत् सत्य सिद्ध होता है। अतः शुक्तिरजत्वत् जगतका मिथ्यात्व अवैदिक बौद्धमतमें है। वैदिक मतमें नहीं। ग्रन्थकार सम्मान्य आचार्य अद्धा पदके द्वारा अवैदिक पूर्वपक्षका निराकरण करते हैं।

अद्धा शब्दका द्वितीय अर्थ है - साक्षात्। इस अर्थको ग्रहण करने पर अद्धा शब्दका केवल एक स्थान पर 'अद्धा यद् अवितम्' इस प्रकार अन्वय होता है। तब श्लोककी प्रथम पंक्तिका यह अर्थ

होता है - जिनसे जगत् उत्पन्न होता है। साक्षात् जिनके द्वारा स्थित रहता है और प्रलय कालमें सम्पूर्ण जगत् जिनमें लीन होता है। श्रीरामचन्द्र ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति पर्यन्त समष्टि सृष्टिको करते हैं। इसके बाद ब्रह्माको उत्पन्न करके ब्रह्माके द्वारा सृष्टिको करते हैं। श्रीभगवान् माता पिताके द्वारा भी सृष्टि करते हैं। इस प्रकार श्रीभगवान् ही ब्रह्माण्डोत्पत्ति पर्यन्त सृष्टि कार्य करते हैं। उत्तरकालीन सृष्टि ब्रह्मा आदि के द्वारा करते हैं। श्रीरामचन्द्र जी रुद्रके अन्तर्यामी होकर रुद्रके द्वारा जगतका संहार (लय) आरम्भ करते हैं। बादमें रुद्रका भी संहार करके साक्षात् जगत्का संहार करते हैं। **तात राम नहिं नर भूपाला, भुवनेश्वर कालहु कर काला** (मानस ५/३८/१) इस प्रकार श्रीभगवान् जगतकी उत्पत्ति और लय साक्षात् तथा परम्परया दोनों प्रकारसे करते हैं, किन्तु जगत्की स्थिति (रक्षा या पालन) साक्षात ही करते हैं।

सब सम्पदा परमात्माकी ही है। वे ही जीवोंके कर्मानुसार उनको फल देने वाले हैं। निखिल जगतका प्रकाशक जो तेज सूर्य और चन्द्रमाके पास है। वह श्रीभगवान्ने ही उनको दिया है। 'परब्रह्म श्रीरामकी आज्ञाका उल्लंघन करनेसे उनके द्वारा मुझे दण्ड प्राप्त होगा'। इस प्रकार होने वाले भयसे वायु सदा चलती रहती है। यह कभी भी अपना कार्य अवरुद्ध नहीं करती। इसके कार्यके अवरोधसे प्राणियोंका अन्त होना ध्रुव है।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।।

(कठोपनिषत् २/३/३)

परमात्माके भयसे अग्नि जलाती है। इनके भयसे सूर्य प्रकाश करता है। इनके भयसे इन्द्र, वायु और पञ्चम मृत्यु ये सभी अपना-अपना कार्य करते हैं। इनके भयसे ही पृथ्वी पर्वत, नदी, सागर सहित सभी प्राणियोंको धारण करती है। नीचे रसातलमें नहीं जाती है।

कूटस्थका अर्थ निर्विकार अथवा सभीका आधार है। श्रीराम निर्विकार अर्थात् दोषोंसे रहित हैं। और सभीके आश्रय हैं। वे एक अर्थात् अद्वैत तत्त्व हैं। व्ययका विनाश अर्थ होता है। श्रीराम विनाशसे रहित होनेके कारण अव्यय कहे जाते हैं। वे विश्वभर्त्ता हैं। अर्थात् आपत्तियोंसे विश्वकी रक्षा करने वाले हैं।

ज्ञ (सर्वज्ञ) साक्षी, बहुशुभगुणवान् (अनेक कल्याणकारक गुणोंका आश्रय) इन पदों का विवरण अर्थपञ्चककी व्याख्यामें प्राप्यके निरूपणके प्रसंगमें किया जा चुका है।

श्रीमानर्च्यः शरण्यो बहुविधविबुधैर्योगिगम्याङ्घ्रिपद्मोऽ
स्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिमान्यो दान्यः।
शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः सुमहितमहिमा साधुवेदैरशेषै
र्निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुषविजरो गीर्मनोभ्यामगम्यः।।४।।

अर्थ – इन्द्र, ब्रह्मा आदि विविध देवताओंके द्वारा अर्चनीय, भक्तियोगी जिनके पादपद्मोंका आश्रय प्राप्त करते हैं। वाल्मीकि, व्यास आदि सत्पुरुषोंके द्वारा जिनकी उज्ज्वलकीर्तिका गान किया जाता है, वे श्रीहनुमान् आदि सूरियोंके द्वारा सेवित, क्लेश आदि विकारोंसे रहित, शरण प्रदान करनेमें कुशल, परम कृपालु श्रीसीता जीके साथ सर्वदा सुशोभित होने वाले भगवान् श्रीरामचन्द्र जी हैं। मन्त्रब्राह्मणात्मक उत्तम चारों वेदोंके द्वारा जिनके सम्मानित ऐश्वर्यका निरन्तर गान किया जाता है। वे श्रीरघुनाथ जी जरावस्थासे रहित, मृत्युसे रहित, समस्त हेयगुणोंसे रहित सर्वशक्तिमान और मन-वाणी के अविषय हैं।

व्याख्या – परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी (श्वेताश्वेतरोपनिषत् ६/८) जगत् की सृष्टि और स्थिति आदि कार्योंके लिए उपयोगी श्रीरामचन्द्र जीकी विचित्र शक्तियाँ नाना प्रकारकी सुनी जाती हैं। वे स्वभाविक हैं। श्रीमान् शब्दका विवरण अर्थ पञ्चक ग्रन्थमें प्राप्यकी व्याख्यामें किया जा चुका है। अस्पृश्यः

क्लेशादिभिः (क्लेश आदिसे रहित) और विकलुष (हेय गुणोंसे रहित)का विवरण रहस्यत्रय (प्रथम)में रकार पदकी व्याख्यामें देखना चाहिए।

(तत्त्वत्रय की व्याख्या समाप्त)

रहस्यत्रय (प्रथम)

भाष्यकार स्वामिरामानन्दाचार्य प्रणीत

सज्जाप्यस्तारकाख्यो मनुवर इह तैर्वह्निबीजं यदादौ
रामो ङेप्रत्ययान्तो रसमितशुभदस्वक्षरः स्यान्नमोऽन्तः।
मन्त्रो रामद्वयाख्यः सकृदितिचरमप्रान्वितो गुह्यगुह्यो
भूताक्ष्युत्संख्यवर्णः सुकृतिभिरनिशं मोक्षकामैर्निषेव्यः।।१।।

जिसके आदिमें वह्नि बीज रां है, मध्यमें ङे प्रत्ययान्त राम शब्द तथा अन्तमें नमः पद है। वह कल्याणकारक छः सुन्दर अक्षरोंसे युक्त **'रां रामाय नमः'** यह तारक नामक मन्त्रराज इस लोकमें मुमुक्षुओंके द्वारा सम्यक् जपनीय है। **'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।'** इस चरममन्त्रके सहित २५ अक्षर वाले श्रीरामके अतिगोपनीय मन्त्रद्वय **श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये** और **श्रीमते रामचन्द्राय नमः'** ये निष्पाप मुमुक्षुओंके द्वारा सदा अनुसन्धेय हैं।

प्रथमरहस्य

(मन्त्रराजरहस्य)

मन्त्राणां व्यापकानां भगवत इह चाव्यापकानान्तु मध्येऽ–
तिश्रेष्ठो व्यापकः स श्रुतिमुनिसुमतः शिष्टमुख्यैर्गृहीतः।
नित्यानामाश्रयोऽयं परित उरुशुभो राममन्त्रः प्रधानम्
प्राप्योऽथप्रापकश्च प्रचुरतरगुणज्ञानशक्त्यादिकानाम्।।२।।

अर्थ – श्रीभगवान्के अव्यापक मन्त्रोंसे व्यापक मन्त्र श्रेष्ठ

हैं। इन व्यापक मन्त्रोंके मध्यमें व्यापक राममन्त्र अतिश्रेष्ठ है। वह वेदसम्मत और मुनिसम्मत है। वशिष्ठ, पराशर आदि प्रमुख शिष्टोंके द्वारा गृहीत है। सब प्रकारसे श्रेष्ठ जो यह प्रधान राममन्त्र श्रीहनुमान् आदि नित्य भक्तोंका भी आश्रय है। वह कल्याणार्थ जीवोंके द्वारा ग्राह्य है। यह ज्ञान शक्ति आदि प्रचुरतर गुणोंकी प्राप्तिका हेतु है।

(व्यापक मन्त्र वे हैं, जो सर्वव्यापक भगवान्के स्वरूपका प्रतिपादन करते हैं। उनके अवतार, गुण और लीलाओंमेंसे किसी एकके प्रतिपादक मन्त्र अव्यापक कहलाते हैं) ।।२।।

यावद्वेदार्थगर्भं प्रणवि जगदुदाधारभूतं सबिन्दु
प्रव्यक्तं रामबीजं श्रुतिमुनिगदितोत्कृष्टषड्व्याप्तिभेदम्।
रेफारूढत्रिमूर्ति प्रचुरतरमहाशक्ति विश्वोन्निदानं
शश्वत्संराजते यद्विविधसकलसम्भासमानप्रपञ्चम्।।३।।

अर्थ – सम्पूर्ण वेदार्थसे युक्त, प्रणवका आश्रय, जगतका उत्कृष्ट आधार, जगत्का उत्पादक, बिन्दु सहित राम मन्त्रका बीज श्रुतिमुनिप्रोक्त, उत्कृष्ट छः व्याप्ति विशेष वाला है। जिसके अवयव रेफ पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिदेव आश्रित हैं। जगत्की उत्पत्ति, रक्षण तथा प्रलय करनेके लिए उपयोगी, समानता तथा अधिकतासे रहित विलक्षण शक्तिवाला, विश्वका आदिकारण, विविध प्रकारका दृश्यमान स्थावर-जंगम रूप सकल प्रपंचका आधार तथा सबका प्रकाशक बिन्दु सहित जो 'रां' बीज है वह राममन्त्रके आदिमें सदा सुशोभित होता है।

व्याख्या – जो सम्पूर्ण वेदोंका अर्थ है, वही 'रां' बीजका अर्थ है। इसलिए रां बीजको सम्पूर्ण वेदार्थसे युक्त कहा जाता है। कार्यका आश्रय कारण होता है। 'रां' बीज कारण है। प्रणव कार्य है, अतः उसका आश्रय रां बीज है। यह नाम, रूप (विग्रह), गुण, यश, स्वरूप

और मन्त्र इन छः अर्थोंका प्रतिपादक होनेके कारण इन छःकी व्याप्तिसे युक्त कहा जाता है। जगत्के आधार एवं उत्पादक श्रीभगवान् हैं। 'रां' बीज वाचक है, श्रीभगवान् वाच्य हैं। यहाँ वाच्यवाचकमें अभेदकी विवक्षासे बीजको आधार एवं उत्पादक कहा गया है। इसी प्रकार सर्वाधार हरिका वाचक रेफ आधार है।।३।।

तत्राद्येन पदेन रेण भगवान् सीतापतिः प्रोच्यते
श्रीरामो जगतां गुणैकनिलयो हेतुश्च संरक्षकः।
तच्छेषी पदतोऽप्यतो भगवतोऽनन्यार्हशेषत्वकं
व्यावृत्तिस्तु सुरान्तरादिगतसत्तच्छेषताया मुहुः।।४।।

अर्थ – बीजमें विद्यमान मन्त्रके प्रथम पद रेफके द्वारा भगवान् श्रीसीताराम कहे जाते हैं। वे सीतापति श्रीरामचन्द्र जगत्के उत्पादक, संरक्षक एवं ज्ञानादि तथा वात्सल्यादि गुणोंके प्रधान आश्रय हैं, सबके शेषी हैं। द्वितीय पद अकारके द्वारा श्रीभगवान्का अनन्यार्हशेष जीव कहा जाता है। पुनः ''देवतान्तरादिका अनन्यार्ह शेष जीव है।'' इस कथनका निराकरण किया जाता है।

व्याख्या – कर्मानुष्ठानका फल अल्प एवं अस्थिर होनेसे तथा ब्रह्मोपासनाका फल अनन्त एवं स्थिर होनेसे **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** (ब्रह्मसूत्र १/१/१) इस प्रकार ब्रह्मको जिज्ञास्य (उपास्य) कहा गया है। उपास्य ब्रह्म कौन है ? ऐसी अपेक्षाकी निवृत्तिके लिए **'जन्माद्यस्य यतः'** यह द्वितीय सूत्र है। श्री सम्प्रदायमें कई स्थलोंमें जीवको श्रीभगवान्का शेष कहा जाता है, कई स्थलोंमें श्री भगवान्का दास कहा जाता है। इसका भाव यह है कि दूसरेके उपयोग में आने वाले सभी पदार्थोंको शेष कहते हैं, चाहे वे पदार्थ चेतन हों अथवा अचेतन। यदि वे पदार्थ दूसरोंके उपयोगमें आते हैं, तो वे शेष कहे जाते हैं। दूसरेके उपयोग अर्थात् सेवामें काम आने वाला चेतन दास कहलाता है। इससे सिद्ध होता है कि शेषत्व सामान्य धर्म है क्योंकि वह चेतन और अचेतन दोनोंमें संगत होता है। दासत्व विशेष धर्म

है क्योंकि यह चेतनोंमें ही संगत होता है, अतएव सामान्य धर्मको लेकर जीवको कहीं-कहीं श्रीभगवान्‌का शेष कहा जाता है। विशेष धर्मको लेकर जीवको कहीं-कहीं श्रीभगवान्‌का दास कहा जाता है। जीव श्रीभगवान्‌के लिए ही है, दूसरेके लिए नहीं। इसलिए जीव अनन्यार्ह शेष कहलाता है। यद्यपि जीव संसारमें माता-पिता इत्यादिका भी शेष बनकर रहता है, परन्तु यह शेषत्व कर्मकृत है, स्वभाविक नहीं क्योंकि प्राचीन कर्मके कारण ही संसारी जीव दूसरोंका शेष अर्थात् सेवक बनकर रहता है, स्वभावतः नहीं। स्वभावसे तो जीव भगवान्‌का दास बनकर रहता है। श्रीभगवान्‌का दास बनकर रहना जीवका स्वभाव है। अतएव वह मिट नहीं सकता क्योंकि किसी वस्तुका स्वभाविक धर्म उस वस्तुके रहते नहीं मिट सकता है।

पितापुत्रत्वसम्बन्धो जगत्कारणवाचिना।
रक्ष्यरक्षकभावश्च रेण रक्षकवाचिना॥५॥
शेषशेषित्वसम्बन्धश्चतुर्थ्या लुप्तयोच्यते।
भार्याभर्त्तृत्वसम्बन्धोऽप्यनन्यार्हत्ववाचिना॥६॥
अकारेणापि विज्ञेयो मध्यस्थेन महामते।
स्वस्वामिभावसम्बन्धो मकारेणाथ कथ्यते॥७॥

अर्थ – जगत्कारणके वाचक तथा जगत् रक्षकके वाचक रकारके द्वारा जीव और ब्रह्मका पिता-पुत्र भाव सम्बन्ध और रक्ष्य-रक्षक भाव सम्बन्ध कहा जाता है। रकारके बाद लुप्त हुई चतुर्थी विभक्तिके द्वारा उन दोनोंका शेषशेषी भाव सम्बन्ध कहा जाता है। हे महामते सुरसुरानन्द! रकार और मकारके मध्यमें स्थित अनन्यार्हत्वके वाचक अकारसे उन दोनोंका भार्याभर्ता भाव सम्बन्ध कहा जाता है और मकारके द्वारा पुनः दोनोंका स्वस्वामी भाव सम्बन्ध कहा जाता है॥५,६,७॥

आधाराधेयभावोऽपि ज्ञेयो रामपदेन तु।
सेव्यसेवकभावस्तु चतुर्थ्या विनिगद्यते॥८॥

अर्थ – बीजके पश्चात् उच्चरित 'रामपद'के द्वारा जीव और ब्रह्मका आधार-आधेय भाव सम्बन्ध कहा जाता है। राम पदसे पर चतुर्थी विभक्तिके द्वारा सेव्यसेवक भाव सम्बन्ध कहा जाता है। ८।

नमः पदेनाखण्डेन त्वात्मात्मीयत्वमुच्यते।
षष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग्यभोक्तृत्वमप्युत॥९॥

अर्थ – अखण्ड 'नमः' पदके द्वारा तो जीव और ब्रह्मका आत्माआत्मीयभाव सम्बन्ध कहा जाता है। 'न' और 'मः'को पृथक् पद मानने पर मः इस षष्ठी विभक्त्यन्त पदके द्वारा भोग्य और भोक्ताभाव सम्बन्ध कहा जाता है॥९॥

ज्ञानानन्दस्वरूपोऽवगतिसुखगुणो मेन वेद्योऽणुमानो
देहादेरप्यपूर्वो विविदितविविधस्तत्प्रियस्तत्सहायः।
नित्यो जीवस्तृतीयेन तु खलु पदतः प्रोच्यते स्वप्रकाशो
जिज्ञासूनां सदेत्थं शुभनतिसुमते! शास्त्रवित्सज्जनानाम्॥१०॥

अर्थ – श्रीरामचन्द्रको प्रणाम करने विषयक बुद्धि वाले सुरसुरानन्द! शास्त्रवित् सज्जन जिज्ञासु तृतीय पद मकारके द्वारा जीवको इस प्रकार जानें कि वह ज्ञानानन्द स्वरूप है। ज्ञान और आनन्द गुण वाला है। अणु परिमाण है। देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धिसे विलक्षण है। नित्य, मुक्त और बद्ध इन तीन प्रकारोंसे ज्ञात होने वाला है। श्रीरामको प्रिय है एवं श्रीराम उसके सहायक हैं। वह स्वप्रकाश है, ऐसा जीव इस तृतीय पदसे कहा जाता है।१०।

मवाच्योऽहं रवाच्याय शेषभूतोऽस्मि सर्वदा।
इतीत्थमेव बोध्यो ज्ञैर्वाक्यार्थस्तद्विवित्सया॥११॥

अर्थ – मकारका वाच्य मैं आत्मा रकारके वाच्य श्रीरामका सर्वदा शेष हूँ इस प्रकार साधक मन्त्रार्थंको जाननेकी इच्छासे वाक्यार्थ जानें।११।

रामायेति चतुर्थेन श्रिया देव्यास्तु सर्वदा।
चेतनाऽचेतनानाञ्च रमणाश्रयतेर्यते।।१२।।

अर्थ – 'रामाय' इस चतुर्थ पदके द्वारा श्रीसीता देवी एवं अन्य सभी चेतनाऽचेतनोंकी रमणाश्रयता (रमणाधिकरणता) कही जाती है।

'**रमन्ते योगिनोऽस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि**' इस श्रुतिके अनुसार योगी श्रीराममें रमण करते हैं अर्थात् आनन्दित होते हैं अतः रमण करने वाले सभीके रमणके आश्रय (अधिकरण) श्रीराम हैं।१२।

स सर्वविधबन्धुत्वं सर्वप्राप्यत्वमेव च।
सर्वप्रापकता तेन तथा चोभयलिङ्गता।।१३।।

अर्थ – उस चतुर्थ पदके द्वारा यह कहा जाता है कि रमणके आश्रय श्रीराम सभी प्रकारसे हमारे बन्धु हैं, सर्वसुलभ होनेके कारण सभीके द्वारा प्राप्य हैं। वे सब प्रकारसे बन्धु होनेके कारण सभी फलोंकी प्राप्ति कराने वाले हैं। वे उभयलिङ्ग हैं।

व्याख्या – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थरूप फल हैं। श्रीभगवान् ही कर्म और उपासनासे प्रसन्न होकर इन फलोंकी प्राप्ति कराते हैं। वेदवेद्य परब्रह्म सगुण, निर्गुण दोनों हैं। प्राकृत हेय गुणोंसे रहित होनेके कारण ब्रह्मको निर्गुण कहा जाता है। अलौकिक गुणगणसे सम्पन्न होनेके कारण उनको सगुण कहा जाता है। इस प्रकार श्रुति-प्रतिपाद्य सगुण और निर्गुण तत्त्व सर्वथा एक ही है। **निर्गता निकृष्टाः प्राकृताः गुणाः यस्मात्तन्निर्गुणमितिव्युत्पतेर्निकृष्टगुणराहित्यमेव निर्गुणत्वम्। तथैव च सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः**। (ब्रह्मसूत्र आनन्दभाष्य जन्माद्यधिकरण १/१/२) जिस प्रकार छत्र और चामर राजाके असाधारण लिङ्ग (चिह्न) होते हैं। उसी प्रकार सगुणत्व और निर्गुणत्व दोनों ही परब्रह्मके लिङ्ग हैं।

उच्यते तत्पदेनैव सच्चिदानन्दरूपता।
यावद्विभूतिनेतृत्वं श्रीरामब्रह्मणो मतम्।।१४।।

अर्थ – उसी चतुर्थ पदके द्वारा ही परब्रह्म श्रीरामकी सत्यानन्दचिदरूपता कही जाती है और उनका उभयविभूतिनायकत्व कहा जाता है।

व्याख्या – '**सत्यज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म**' (तैत्तिरीयोपनिषत् २/१/१) ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है। यहाँ सत्य पदका अर्थ है – अविकारी। **सत्यपदं स्वरूपतो गुणतश्च विकारराहित्यं बोधयति। सर्वविकार रहितत्वात् सत्यस्वरूपं ब्रह्मेत्यर्थः'** (आनन्द भाष्य) ऐसा होनेसे वे स्वरूपतः विकार वाली प्रकृति एवं गुणतः विकार वाले जीवसे भिन्न सिद्ध होते हैं। परमात्मा ज्ञान स्वरूप हैं। अनुकूलत्वेन अनुभूयमान होनेके कारण उनका यह ज्ञानस्वरूप ही आनन्द है। वे चिद्रूप अर्थात् चेतन हैं।१४।

रागादिकारणे बन्धौ तेनैव विनिवर्त्यते।
बन्धुत्वप्रतिपत्तिश्च भासमानाविचारतः।।१५।।

अर्थ – राग आदिके कारण भ्रातापुत्रादि अस्वाभाविक बन्धुओंमें अविवेकसे भासित होने वाली बन्धुत्वकी प्रतीति इस चतुर्थ पदके द्वारा विनिवृतकी जाती है।

व्याख्या – श्रीभगवान् ही हमारे स्वाभाविक बन्धु (सम्बन्धी) हैं क्योंकि वे अनादि कालसे लेकर अनन्त काल तक साथ ही रहते हैं, कभी भी साथ नहीं छोड़ते। कर्मरूप अज्ञानके कारण मिलने वाले भ्राता पुत्रादि स्वाभाविक बन्धु नहीं हैं बल्कि ये अबन्धु हैं। अविवेकके कारण राग आदि होते हैं। राग आदिके कारण अबन्धुओंमें बन्धुत्वकी प्रतीति होती है। रामाय पदके द्वारा इसकी निवृत्ति कही जाती है।१५।

तच्चतुर्थ्या स्वानुरूपकैङ्कर्यप्रार्थनोच्यते।
विषयान्तरसेवाऽपि प्राप्ता सा विनिवर्त्यते।।१६।।

अर्थ – जीवके स्वरूपके अनुकूल श्रीभगवान्‌का कैंकर्य प्राप्त करनेके लिए जो प्रार्थना है वह रामप्रतिपदिकसे उत्तरवर्ती चतुर्थी विभक्तिके द्वारा कही जाती है। जो रागतः प्राप्त देवतान्तरका कैंकर्य है, वह भी इसके द्वारा निवृत किया जाता है।

व्याख्या – जीव स्वाभाविक रूपसे श्रीरामका दास है, अतः उनका कैंकर्य प्राप्त करनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिए। क्षुद्रत्रिवर्गरूप फलकी प्राप्तिके लिए रागतः प्राप्त जो देवतान्तरोंका कैंकर्य है, उसे नहीं करना चाहिए। ७।

पदेन नेनात्र तु पञ्चमेन प्रकथ्यतेऽथो तदनन्यशेषता।
हेयं तदन्यार्थमपि स्वतन्त्रता निवर्त्यतेऽतः सततं स्वकीया।।१७।।

अर्थ – इस मन्त्रमें आये ‘न’ इस पञ्चम पदके द्वारा जीवका भगवदनन्यशेषत्व (जीव भगवान्‌से अतिरिक्त किसीका शेष नहीं है यह) कहा जाता है। तदन्यप्रयोजनत्व (श्रीभगवान्‌से अन्य प्रयोजन) त्याज्य है, अतः सर्वथा जीवको स्वतन्त्रता का निराकरण किया जाता है।

पदेनषष्ठेन मइत्यनेन स्वस्वाम्यनन्यार्हकशेषताऽपि।
समुच्यते चेतनवाचिना तु तत्किङ्करत्वैकफलत्वमेव।।१८।।

अर्थ –चेतनवाचक षष्ठ पद ‘म’के द्वारा भगवन्निष्ठ जीवस्वामित्व तथा अनन्यार्ह- शेषता (जीव श्रीरामसे अतिरिक्त अन्य किसीका शेष होने योग्य नहीं है, यह) कही जाती है और उनकी सेवाको ही प्रधान फल कहा जाता है।

उपायार्थपरेणासावखण्डनमसोच्यते।
उपायो हि मवाच्यस्य रवाच्यो राम एवसः।।१९।।

अर्थ – उपाय अर्थके बोधक अखण्ड ‘नमः’ पदसे यह कहा जाता है कि मकारके वाच्य जीवके रकारके वाच्य श्रीरामकी प्राप्तिमें

श्रीराम ही उपाय हैं।

बीजेनैवाथ जीवस्य स्वरूपं प्रतिपाद्यते।
रामायेति परस्यापि चतुर्थ्या तत्फलस्य च।।२०।।

अर्थ – बीजके द्वारा ही जीवके स्वरूपका तथा रामाय इस पदके घटक राम प्रातिपदिकके द्वारा परब्रह्मके स्वरूपका प्रतिपादन किया जाता है तथा राम प्रतिपदिकसे उत्तरवर्ती चतुर्थी विभक्तिके द्वारा जीवकी साधनाका फल सतत भगवद्–दर्शनका प्रतिपादन किया जाता है।२०।

उपायस्य त्वखण्डेन नमः खण्डेनोच्यते।
सखण्डेन मकारेण षष्ठ्यन्तेन विरोधिनः।।२१।।

अर्थ – अखण्ड ‘नमः’ पदके द्वारा भगवत्प्राप्तिके उपाय भक्ति और प्रपत्तिके स्वरूपका प्रतिपादन किया जाता है। सखण्ड नमः पदमें विद्यमान षष्ठ्यन्त मकार पदके द्वारा उपायके विरोधी विकारोंका प्रतिपादन किया जाता है।।२१।

तात्पर्यार्थोऽशेषवेदशास्त्राभिरुचिसंश्रयः ।
वाक्यार्थः प्राप्यसम्बन्धिस्वरूपाभिनिरूपणम्।।२२।।

अर्थ – सम्पूर्ण वेद शास्त्रोंकी आज्ञाका पालन करना ही श्रीराममन्त्रका तात्पर्यार्थ है। प्राप्य परब्रह्म सम्बन्धी प्रत्यगात्मस्वरूपका चिन्तन करना वाक्यार्थ है।।२२।।

तारकस्य प्रधानार्थः स्वस्वरूपनिरूपणम्।
सम्बन्धस्यानुसन्धानमनुसन्ध्यर्थ इष्यते।।२३।।

अर्थ – तारक मन्त्रका प्रधान अर्थ आत्मामें विद्यमान परमात्माका चिन्तन करना है। अपने और परमात्माके सम्बन्धोंका अनुसन्धान करना अनुसन्धि–अर्थ माना जाता है।। २३।।

द्वितीय रहस्यम्

(मन्त्रद्वय रहस्य)

उक्त्वेत्थं तारकार्थं तु द्वयार्थः प्रतिपाद्यते।
विमत्सराः प्रपश्यन्तु प्रगृह्णन्त्ववयन्तु च।।२४।।

अर्थ – पूर्वोक्त प्रकारसे तारकमन्त्रराजके अर्थको कहकर **श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये** और **श्रीमते रामचन्द्राय नमः** इस मन्त्रद्वयके अर्थका प्रतिपादन किया जाता है। शुद्ध अन्तःकरण वाले भक्त गण इसको जानें, मनन करें और सतत भक्ति करें।।२४।।

श्रीरामद्वयमन्त्रमद्भुततमं वाक्यद्वयं षट्पदं,
वाणाक्षिप्रमिताक्षरन्तु खलु विद्धि त्वं दशार्थान्वितम्।
युक्तं तत्त्रिपदैस्तु तत्र सुमते! पूर्वं शुभस्यास्पदं,
वाक्यं पञ्चदशाक्षरं तदनु दिग्वर्णात्मकं तूत्तरम्।।२५।।

अर्थ – हे सुमति सुरसुरानन्द ! तुम ऐसा जानो कि श्रीरामचन्द्रके मन्त्रद्वय अत्यन्त अद्भुत हैं। ये मन्त्रद्वय वाक्य रूप हैं। इन दोनोंमें छः पद हैं। पच्चीस (२५) अक्षर हैं। दश अर्थोंसे युक्त हैं। मन्त्रद्वयके मध्यमें प्रथम मन्त्र तीन पदोंसे युक्त है। मोक्षका आश्रय है। इसमें पन्द्रह अक्षर हैं। इसके बादका मन्त्र दश अक्षरों वाला है।।२५।।

सर्वाधीशेश्वरस्याप्तिर्हेतुरत्राभिधीयते ।
सीतापुरुषकारार्था श्रीत्यनेन पदेन तु।।२६।।

अर्थ – **'श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये'** इस मन्त्रमें स्थित 'श्री' इस पदके द्वारा सकलचराचरके नियामक ईश्वरकी प्राप्तिकी हेतु पुरुषकाररूपा भगवती श्रीसीता जी कही जाती हैं। जीवके उद्धारके लिए उसकी प्रार्थना श्रीरामचन्द्रको सुनाने वाली माता श्रीजी पुरुषकार कही जाती हैं। २६।

मता पुरुषकारस्य नित्यसम्बन्ध उच्यते।
रामचन्द्रेति पदतो वात्सल्यादिगुणस्य च।।२७।।

अर्थ – मतुप् प्रत्ययके द्वारा पुरुषकाररूपा श्रीसीता जीका श्रीरामचन्द्रजीके साथ नित्य सम्बन्ध कहा जाता है। 'रामचन्द्र' इस द्वितीय पदके द्वारा उनमें वात्सल्यादि गुणोंका नित्य सम्बन्ध कहा जाता है। **'भूमनिन्दा प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने'**। इस महाभाष्यवार्तिकके अनुसार **श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ** यहाँ पर श्री शब्दसे मतुप् प्रत्यय नित्य सम्बन्ध अर्थमें हुआ है। **'अनन्या च मया सीता भास्करेण प्रभा यथा'** इस रामायण वचनके अनुसार प्रभा और सूर्यके सदृश सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्र और पुरुषकार रूपा श्रीसीता जीका नित्य सम्बन्ध है। 'वात्सल्य आदि' यहाँ आदि पदसे करूणा, सौहार्द, सौशील्य आदि गुणोंको जानना चाहिए।।२७।।

चरणावित्यनेनैव वात्सल्यादिकसीतयोः।
विलक्षणस्य दिव्यस्य विग्रहस्याश्रयस्य।।२८।।

अर्थ – **'चरणौ'** इस शब्दके द्वारा वात्सल्यादि गुणों और श्रीसीता जीका नित्य सम्बन्ध कहा जाता है तथा विलक्षण दिव्य विग्रह और श्रीरामजीका नित्य सम्बन्ध कहा जाता है।।२८।।

शरणेतिपदेनैवोपायस्तद्विग्रहो बुधैः।
उपायाध्यवसायस्तु प्रपद्य इति वर्ण्यते।।२९।।

अर्थ – विद्वज्जन 'शरणम्' इस पदके द्वारा श्रीरामकी प्राप्तिमें उनके विग्रहको ही उपाय कहते हैं। श्रीरामकी प्राप्तिमें उनका विग्रह हेतु है। ऐसे निश्चयका **'प्रपद्ये'** इस पदसे प्रतिपादन किया जाता है। **'रामब्रह्म व्यापक जग जाना'**। (रा.च.मा. १/११६/८) परब्रह्म श्रीराम व्यापक हैं। निरवयव हैं। उनमें सरलतासे मन नहीं लगता। मन लगे बिना उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, अतः उनके दिव्य मंगल विग्रहके चिन्तनका विधान किया गया है। श्रीविग्रहके निरन्तर अनुसन्धानसे पाप राशिका दाह होने पर मन व्यापक परब्रह्म श्रीराममें लग जाता है, इस प्रकार दिव्यमंगलविग्रह वाले

श्रीरामकी प्राप्तिमें उनका विग्रह उपाय बनता है।।२६।।

प्राप्यं मिथुनमेवेति श्रीमते पदतो मतम्।
रामचन्द्रेति पदतः स्वामित्वं प्रतिपाद्यते।।३०।।

अर्थ – भक्तिके फलस्वरूप युगल सरकार ही प्राप्य हैं। ऐसा श्रीमते पदसे कहा जाता है। 'रामचन्द्र' इस पदसे उनके सकल चराचरस्वामित्वका प्रतिपादन किया जाता है।।३०।।

विभक्त्यायेतिपदतः शेषवृत्तिर्महात्मभिः।
विरोधिनो निरासस्तु नमः पदेन वर्ण्यते।।३१।।

अर्थ – महात्माओंके द्वारा 'राम' प्रतिपदिकसे परवर्ती 'आय' विभक्तिसे श्रीरामके प्रति शेष आत्माके कर्तव्यका वर्णन किया जाता है। 'नमः' पदके द्वारा तो भगवत्प्राप्तिके विरोधी कामादि विकारोंके अभावका वर्णन किया जाता है।।३१।।

तात्पर्यार्थोऽस्य विज्ञेय आचार्यरुचिसंश्रयः।
वाक्यार्थो मन्त्ररत्नस्य त्वथ निर्णीयते बुधैः।।३२।।
प्राप्यप्रापकसम्बन्धस्वरूपाभिनिरूपणम्।
प्रधानार्थस्तु तद्युग्मकैङ्कर्यस्य प्रधानता।।३३।।

अर्थ – मन्त्रार्थरूप ब्रह्मविद्याप्रदाता महान् आचार्यकी आज्ञाका सम्यक् पालन करना ही मन्त्रका तात्पर्यभूत अर्थ है, ऐसा जानना चाहिए, इस प्रकार तत्त्ववेत्ताओंके द्वारा मन्त्ररत्नका निर्णय किया जाता है। प्राप्य और प्रापकका सम्बन्ध तथा इन दोनोंके स्वरूपका सम्यक् प्रकारसे अनुसन्धान करना वाक्यार्थ है। युगल सरकारके कैंकर्यकी प्रधानता मन्त्ररत्नका प्रधान अर्थ है।।३३।।

स्वदोषाभ्यनुसन्धानमनुसन्ध्यर्थ उच्यते।
एवमेवानुसन्धेयं मोक्षकामैरहर्दिवम्।।३४।।

अर्थ – अपने दोषोंका अनुसन्धान मन्त्ररत्नका अनुसन्धि अर्थ कहा जाता है। मुमुक्षुओंको उक्त प्रकारसे मन्त्रद्वयका सतत अनुसन्धान करना चाहिए।३४।

तृतीय रहस्य

(चरममन्त्ररहस्य)

प्रोक्ता वत्सक! मन्त्ररत्नविवृतिः सन्मानसाभीष्टदं
सद्वेद्यं सकृदित्यवेहि चरमं निर्णीतवाक्यार्थकम्।
रामीयं हि तदीयमन्त्रनिरतैरुद्बोधनीयं परं,
द्वात्रिंशत्प्रमिताक्षरं मनुपदं द्व्यर्द्धं जगद्विश्रुतम्।।३५।।

अर्थ – हे वत्स सुरसुरानन्द! रत्नस्वरूप मन्त्रद्वयका व्याख्यान कहा गया। विद्वानोंके द्वारा निर्णीत वाक्यार्थ वाले, सज्जनोंको अभीष्ट फल देने वाले, सुन्दर वेद्य **'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम'** इस चरममन्त्रके अर्थको सुनिये। यह भगवान् श्रीरामसे प्राप्त है। उनके मन्त्रानुसन्धानमें तल्लीन मुनियोंके द्वारा जानने योग्य हैं। जगत् प्रसिद्ध श्रेष्ठ चरममन्त्र बत्तीस (३२) वर्णो, चतुर्दश (१४) पदों तथा पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध रूप दो खण्डोंसे युक्त है।।३५।।

अत्रोपायाऽन्तरस्याथो निवृत्तिः प्रतिपाद्यते।
सकृदित्येवकारेण तूपायनिरपेक्षता।।३६।।

अर्थ – चरममन्त्रके 'सकृद्' इस प्रथम पदके द्वारा भगवत्प्राप्तिके लिए एक बारकी गयी प्रपत्तिसे अन्य उपायोंकी निवृत्तिका प्रतिपादन किया जाता है तथा एव इस द्वितीय पदके द्वारा प्रपत्ति करनेके लिए अन्य उपायोंकी निरपेक्षताका प्रतिपादन किया जाता है।।३६।।

व्याख्या – प्रपत्ति (शरणागति) करने वाले प्रपन्नको इस प्रकार समझना चाहिए कि भगवत्प्राप्तिके कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग उपाय नहीं है। केवल प्रपत्ति ही उपाय है। एक प्रपन्न व्यक्तिके हृदयका यही उद्गार है– **'न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच् चरणारविन्दे। अकिञ्चनोऽनन्य गतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये'।** हे नाथ ! मैं न धर्म (कर्म) निष्ठ हूँ और आत्मज्ञानी नहीं हूँ। आपके चरणारविन्दोंमें मेरी भक्ति भी नहीं है।

मेरा आपसे अतिरिक्त कोई नहीं है, इसलिए सबके आश्रय, आपके पादपद्मोकी शरण (प्रपत्ति) ग्रहण करता हूँ। इस प्रकार भगवत्प्राप्तिके लिए विहित अन्य साधनोंके सम्पन्न करनेमें असमर्थ होने पर प्रपत्ति स्वीकार की जाती है। श्रीरामचन्द्र जीका सकृदेव ऐसा कथन होनेके कारण भगवत्प्राप्तिके लिए प्रपत्ति एक बार ही की जाती है।। ३६।।

प्रपन्नायेतिपदतस्तूपायस्थानमुच्यते।
उपायत्वं भगवतस्तवेतिपदतस्तथा।।३७।।

'प्रपन्नाय' इस तृतीय पदके द्वारा प्रपत्तिके आश्रय अर्थात् प्रपत्ति स्वीकार करने वालेको कहा जाता है, उसी प्रकार 'तव' इस पदके द्वारा (भगवत्प्राप्तिमें) श्रीभगवान्‌के उपायत्वका प्रतिपादन किया जाता है।

व्याख्या – प्रपत्तिके द्वारा श्रीभगवान् प्रसन्न होकर स्वयं ही अपनी प्राप्तिमें उपाय बनते हैं। प्रपन्न ऐसा नहीं समझता है कि मेरे द्वाराकी गयी प्रपत्ति भगवत्प्राप्तिमें साधन है बल्कि उसके लिए साधन, साध्य सब कुछ श्रीभगवान् ही हैं।। ३७।।

अस्मीत्यनेन चोपायस्वीकारः प्रतिपाद्यते।
समाप्त्यर्थेतिशब्देन तूपायानन्यतोच्यते।।३८।।

अर्थ – 'अस्मि' इस पदके द्वारा मनसे श्रीभगवान्‌को पायत्वेन स्वीकार करनेका प्रतिपादन किया जाता है। समाप्ति अर्थ वाले इति शब्दसे तो उपायकी अनन्यता अर्थात् भगवत्प्राप्तिमें प्रपत्तिसे भिन्न कोई उपाय नहीं है, यह कहा जाता है। ३८।

चकारतोऽनुक्तसमुच्चयार्थतो निगद्यते त्वन्य उपाय आत्मवित्।
उपायसंसेव्यधिकारिलक्षणं पदेन वै याचत इत्यनेन तु।।३९।।

अर्थ – हे आत्मज्ञानी सुरसुरानन्द! अनुक्त अर्थके ग्राहक चकारके द्वारा मानसी प्रपत्तिसे अतिरिक्त वाचिक और कायिक प्रपत्ति रूप उपायका कथन किया जाता है। 'याचते' इस पदके द्वारा

तो प्रपत्ति रूप उपायका अनुष्ठान करने वाले अधिकारीका लक्षण कहा जाता है। मनसे मानसी प्रपत्ति की जाती है। वाचिक प्रपत्तिमें मनोव्यापारके साथ ही वाणीसे उच्चारण किया जाता है। कायिक प्रपत्तिमें मनोव्यापार और वाक्–व्यापारके साथ ही शरीरसे प्रणाम किया जाता है, याचना (प्रपत्ति या शरणागति)के बिना श्रीभगवान् द्रवित नहीं होते हैं। प्रपन्न श्रीभगवान्‌की प्रसन्नताके लिए उनसे याचना करता है। यह याचना प्रपत्तिके अधिकारी प्रपन्नका लक्षण है। ३९।

अथाभयमितिप्राप्तिप्रतिबन्धकवारणम्।
सर्वभूतेभ्य इत्येव प्राप्यस्य प्रतिबन्धकम्।।४०।।

अर्थ – **'सर्वभूतेभ्यः'** इस पदके द्वारा प्राप्य स्वरूपकी प्राप्तिका प्रतिबन्धक कहा जाता है तथा **'अभयम्'** इस पदके द्वारा प्राप्य भगवान्‌की प्राप्तिके प्रतिबन्धकोंका वारण कहा जाता है।

व्याख्या – सर्वभूत भगवत्प्राप्तिके प्रतिबन्धक हैं किन्तु ये स्वरूपतः प्रतिबन्धक नहीं है। ये अनात्माकार वृत्तिके विषय बनकर भगवत्प्राप्तिके प्रतिबन्धक बनते हैं। सर्वभूतोंमें कोई रागका विषय बनता है, कोई शोकका, कोई द्वेषका, कोई मोहका। इस प्रकार ये सर्वभूत राग, शोक, द्वेष और मोहादिके विषय बनकर प्रतिबन्धक होते हैं। भगवत्प्राप्तिके साक्षात् प्रतिबन्धक राग, शोक, द्वेष, मोह और अभिमान आदि ही हैं। ये प्रतिबन्धक सर्वभूतेभ्य पदसे कहे गये हैं और इनका निवारण अभयम् इस पदसे कहा जाता है।।४०।।

ददामीतिपदेनाथोपायस्य सर्वशक्तिता।
एतदित्येवपदतोऽसंशयत्वमितीर्य्यते।।४१।।

अर्थ – 'ददामि' इस एकादश पदके द्वारा उपाय की सर्वशक्तिमत्ता (सर्वसामर्थ्य)का प्रतिपादन किया जाता है। 'एतद्' इस द्वादश पदके द्वारा श्रीभगवान्‌की प्रतिज्ञाके विषयमें असंशयत्वका प्रतिपादन किया जाता है।

प्रपत्ति रूप उपाय सर्व सामर्थ्य वाला है। सर्व सामर्थ्य वाला होनेके कारण यह सकल पुरुषार्थोंका साधक है। श्रीभगवान् सत्यप्रतिज्ञ हैं। उनकी प्रतिज्ञा सर्वदेश, सर्वकालमें अव्याहत (अकाट्य) ही होती है। अतः भगवान्‌की प्रतिज्ञाके विषयमें संशयरहित होना चाहिए।। ४१।।

व्रतमेतत्पदेनाथो तद्दाढ्र्यमभिधीयते।
निर्भरत्वानुसन्धानं ममेतिप्रतिपाद्यते।।४२।।

अर्थ – 'व्रतम्' इस त्रयोदश पदके द्वारा उक्त प्रतिज्ञाकी दृढ़ता कही जाती है तथा 'मम' इस चतुर्दश पदके द्वारा निर्भरताके अनुसन्धानका प्रतिपादन किया जाता है।

व्याख्या – अवश्य कर्तव्यको व्रत कहा जाता है। 'व्रतम्' पदका प्रयोग करके श्रीरामचन्द्र जीने यह सिद्ध किया है कि उक्त प्रतिज्ञाका पालन उनके द्वारा अवश्य कर्तव्य है। **'प्रभु हमारी सर्वदा रक्षा करेंगे'।** ऐसा अनुसन्धान निर्भरताका अनुसन्धान है।।४२।।

तात्पर्यार्थोऽस्य विज्ञेयः शरण्यरुचिसंश्रयः।
तत्प्रापकस्वरूपस्य वाक्यार्थोऽथ निरूपणम्।।४३।।

अर्थ – शरणागत रक्षक श्रीरामकी कृपाका आश्रय लेना इस मन्त्रका तात्पर्यार्थ है, ऐसा जानना चाहिए। इस चरममन्त्रका वाक्यार्थ भगवत्प्राप्तिके हेतु पुरुषकाररूप श्रीसीता जीके अनुसन्धानको जानना चाहिए।।४३।।

प्रधानार्थः परेशस्य स्वरूपस्य निरूपणम्।
निर्भरत्वानुसन्धानमनुसन्ध्यर्थ उच्यते।।४४।।

अर्थ – परमेश्वर श्रीरामके स्वरूपका चिन्तन करना प्रधानार्थ तथा निर्भरताका अनुसन्धान करना अनुसन्ध्यर्थ कहा जाता है।

इस प्रकार श्रीवैष्णवमताब्ज भास्करके रहस्यत्रय निरूपण प्रकरणकी व्याख्या सम्पन्न हुई।

श्रीवैष्णवसम्प्रदायाचार्य श्रीस्वामी अग्रदास कृत
रहस्यत्रय (द्वितीय)

मङ्गलाचरणम्

श्रीरामः सर्वलोकानां नायकः करुणार्णवः।
ददातु स्वपदाम्भोजं सर्वदुःखनिवर्तकम्।।

अर्थ – करुणासागर परब्रह्म श्रीरामचन्द्र जी सर्वलोकोंके नायक हैं। वे हमारे हृदयमें सर्वदुःखोंके नाशक अपने पादारविन्दों को स्थापित करें।

श्रीनारदपाञ्चरात्र्याद्युक्तरीत्या मुमुक्षुभिः प्रपन्नैः सदाचार्य कृपाकटाक्षेण रहस्यानि त्रीणि ज्ञातव्यानि – श्रीमन्मन्त्रराजः, श्रीमदष्टाक्षरः, सकृदेव प्रपन्नायेत्यादीनि।।१।।

अर्थ – श्रीनारदपाञ्चरात्रादि में कथित रीति के अनुसार शरणागत मुमुक्षुओं को कृपादृष्टि वाले (सेवा के द्वारा प्रसन्न हुए) महान् आचार्य से तीन रहस्य जानने चाहिए –
१. श्रीमन्मन्त्रराज रहस्य। २. श्रीमदष्टाक्षर रहस्य। ३. सकृदेव प्रपन्नाय इत्यादि रहस्य।

प्रथम रहस्य

रामो ङेऽन्तो वह्निपूर्वो नमोन्तः स्यात् षडक्षरः।
तारको मन्त्रराजोऽयं संसारविनिवर्तकः।।२।।

अर्थ – वह्नि बीज (रां) पूर्व वाला, नमः अन्त वाला, तथा चतुर्थीका एकवचन ङे प्रत्ययान्त राम शब्द (रामाय) से युक्त षडक्षर वाला (रां रामाय नमः) यह तारक मन्त्रराज संसार बन्धनसे पूर्णतः मुक्त करने वाला है।

तत्र श्रीमत्षडक्षरमन्त्रराजः षट्पदात्मकः पञ्चपदात्मकश्चेति।। ३।।

अर्थ – रहस्यत्रय में श्रीमत् षडक्षर मन्त्रराज छः पदों वाला

है। मतान्तरसे पाँच पद वाला है।

तत्र प्रथमं पदं रकारः अव्यक्त चतुर्थ्यन्तः, द्वितीयं पदं अकारः प्रथमान्तः, तृतीयं पदं मकारः प्रथमान्तः, चतुर्थं पदं रामायेति चतुर्थ्यन्तः पञ्चमं पदं नेत्यव्ययम्, षष्ठं पदं मः इति षष्ठ्यन्तम्।।४।।

अर्थ – उन पदोंमें प्रथम पद रकार अव्यक्त चतुर्थी विभक्ति वाला है। द्वितीय पद प्रथमाविभक्त्यन्त अकार है। तृतीय पद प्रथमान्त मकार है। चतुर्थ पद चतुर्थी विभक्त्यन्त रामाय है। न यह अव्यय पञ्चम पद है। म यह षष्ठीविभक्त्यन्त षष्ठ पद है।

तत्र प्रथमपदेन रकारेण निखिलहेयप्रत्यनीककल्याणगुण-गणैकतानः सर्वजगत्कारणभूतः सर्वरक्षकः सर्वशेषी भगवान् सीतापतिः श्रीरामः प्रतिपाद्यते।।५।।

अर्थ – उन छः पदोंके अन्तर्गत प्रथम पद रकारके द्वारा सम्पूर्ण दोषोंसे रहित, कल्याण कारक गुण समूहोंके एकमात्र आश्रय, सभी जगत्के कारण, सर्वरक्षक, सर्वशेषी, सीतापति भगवान् श्रीरामका प्रतिपादन किया जाता है।

व्याख्या – यहाँ निखिलहेय शब्दसे अचेतन वस्तुमें विद्यमान षड् भाव विकार सत्त्व, रज, तम, और चेतन जीवमें विद्यमान क्लेश, कर्म विपाक एवं आशयको ग्रहण करना चाहिए। षड् भाव विकार (भाव पदार्थोंमें रहने वाले विकार) निम्न हैं – **षड्भाव विकाराः भवन्तीति वार्ष्यायणिः – जायतेऽस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यतीति।।**

(निरुक्त १/१/३)

षड्भावविकृतिश्चास्ति जायते वर्धतेऽपि च।
परिणामं क्षयं नाशं षड्भावविकृतिं विदुः।।

(वराहोपनिषत् १/८)

१. जायते – उत्पत्ति। २. अस्ति – है (उत्पन्नावस्थारूप अस्तित्व)।

३. वर्धते – वृद्धि। ४. विपरिणमते – परिणाम। ५. अपक्षीयते – क्षीण होना। ६. विनश्यति – विनाश।

ये छः अचित् पदार्थोंमें रहने वाले भाव विकार हैं। सत्त्व, रज और तम अचित् प्रकृति और प्राकृत पदार्थोंके गुण हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पञ्च क्लेश हैं–

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।

(योगसूत्र २/३)

पुण्य पाप कर्म हैं। जाति, (जन्म) आयु और भोगको विपाक कहते हैं। वासनाओंको आशय कहा जाता है।

उक्त सभी त्याज्य गुणोंसे रहित श्रीभगवान् हैं। श्रीभगवान् ज्ञानानन्द, बल आदि अनन्तकल्याणकारक गुणोंके आश्रय हैं। वे सम्पूर्ण जगत्के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण हैं। वे सभी अवस्थाओंमें सभी प्रकारसे सबकी रक्षा करने वाले हैं।

सर्वशेषी – सभीके स्वामी। **यथेच्छविनियोगार्हः शेषः।** इच्छानुसार जिसका उपयोग किया जा सके वह शेष है। यथेच्छ उपयोग करने वाला शेषी है। जीव भी अपने वस्त्रादिका शेषी है। वस्त्रादि उसके शेष हैं। जीवका यह शेषित्व स्वाभाविक नहीं है किन्तु औपाधिक है। कर्म रूप उपाधिके कारण ही जीव अपनेको सांसारिक पदार्थोंका शेषी एवं उन पदार्थोंको अपना शेष मानता है। वस्तुतः चेतन–अचेतन सबके स्वाभाविक शेषी श्रीभगवान् ही हैं। सब कुछ श्रीभगवान्का ही शेष है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसश्श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।

(विष्णुपुराण ६/५/७४)

समग्रऐश्वर्य, समग्रवीर्य, समग्रयश, समग्रश्री, समग्रज्ञान और समग्रवैराग्य इन छःका नाम भग है। ये जिसमें रहते हैं। वे भगवान् हैं। परब्रह्ममें ही ऐश्वर्य आदि समग्र रूपसे विद्यमान हैं।

एतेन रक्षित्रन्तरप्रतिपत्तिर्व्यावर्त्यते ।।६ ।।

अर्थ – प्रथम पदके उक्त अर्थके द्वारा श्रीभगवान्से अतिरिक्त अन्यके रक्षक होनेके निश्चयका निषेध किया जाता है।

द्वितीयपदेनाकारेण अन्यशेषत्वनिवृत्तिः भगवदनन्यार्हशेषत्वं, देवतान्तरादिशेषत्वव्यावृत्तिश्च प्रतिपाद्यते ।।७ ।।

अर्थ – द्वितीय पद अकारके द्वारा जीवके भगवदनन्यार्हशेषत्व, अन्यशेषत्वकी निवृत्ति तथा अन्य देवताओंके प्रति शेषत्वके निराकरणका प्रतिपादन किया जाता है।

व्याख्या – जीव भगवान्का अनन्यार्ह शेष है। जीवमें भगवान्के प्रति जो शेषत्व विद्यमान है। वह अनन्यार्ह है अर्थात् जीवका शेषत्व श्रीभगवान्से अतिरिक्त अन्य किसीके प्रति होने योग्य नहीं है। यदि कोई जीव अपनेको श्रीभगवान्से अतिरिक्त अन्य किसीका शेष समझता है, तो यह उसकी भ्रान्ति है। भ्रान्तिसे ज्ञात जीवका अन्यके प्रति शेषत्वका निराकरण किया जाता है। यह आत्मा देवताओंकी भी शेष नहीं है। इस प्रकार द्वितीय पद अकारके द्वारा उक्त अर्थद्वयकी निवृत्तिका प्रतिपादन किया जाता है।

तृतीयपदेन मकारेण ज्ञानानन्दस्वरूपो ज्ञानानन्दगुणकोऽणु परिमाणो देहादिविलक्षणः स्वयंप्रकाशो नित्यरूपो जीवः प्रतिपाद्यते।।८।।

अर्थ – तृतीय पद मकारके द्वारा ज्ञानानन्दस्वरूप, ज्ञानानन्द गुणवाले, अणुपरिमाणवाले, देहादिसे विलक्षण, स्वयंप्रकाश, नित्य जीवका प्रतिपादन किया जाता है।

व्याख्या – **ज्ञानानन्दस्वरूपः, ज्ञानानन्दगुणकः** – जीवको जीवात्मा, आत्मा तथा प्रत्यगात्मा भी कहते हैं। नैयायिक आत्माको ज्ञानगुण वाला मानते हैं। शांकरवेदान्ती केवल ज्ञानस्वरूप मानते हैं किन्तु विशिष्टाद्वैत वेदान्त मतमें इसे ज्ञान गुणवाला तथा ज्ञानस्वरूप दोनों ही स्वीकार किया जाता है क्योंकि श्रुतियाँ उभय प्रकारेण इसका प्रतिपादन करती हैं। अन्य सिद्धान्तवादी प्रायः श्रुतियोंके

एकदेश को लेकर स्वसिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं किन्तु बोधायन मतानुयायी विशिष्टाद्वैतवेदान्ती समग्र श्रुतियोंको समान रूपसे प्रमाण मानते हैं। **'विज्ञानात्मा'** (प्रश्नोपनिषत् ४/६) इत्यादि श्रुतियाँ जीवको ज्ञानस्वरूप कहती हैं। तथा **'नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते'** (बृहदारण्यकोपनिषत् ४/३/२३) इत्यादि श्रुतियाँ जीवको ज्ञान गुण वाला कहती हैं। जीवात्मा स्वयं प्रकाश होनेके कारण ज्ञानस्वरूप कहा जाता है। स्वरूपभूत ज्ञानके द्वारा अपना अहन्त्वेन, अनुकूलत्वेन एकत्वेन और प्रत्यक्त्वेन प्रकाश होता है। अनुकूलत्वेन प्रतीत होने वाला ज्ञान ही आनन्द कहा जाता है। किसीको भी अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा कभी प्रतिकूल प्रतीत नहीं होता है बल्कि सर्वकालमें अनुकूल ही प्रतीत होता है। इस कारण यह आत्मा आनन्दस्वरूप कहा जाता है। ज्ञानानन्दका अर्थ है – ज्ञानरूप आनन्द, यही अपना स्वरूप है।

जीव अपनेसे इतर पदार्थोंको अपने आश्रित रहने वाले ज्ञान गुणसे प्रकाशित करता है। यह आत्माश्रित रहनेके कारण धर्मभूतज्ञान कहलाता है। यह भी अनुकूलत्वेन प्रतीयमान होनेसे आनन्द पदका अभिधेय होता है। प्रतिकूलताकी प्रतीति तो अज्ञानके कारण है।

अणुपरिमाणः – **''एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः।''** (मुण्डकोपनिषत् ३/१/९) तथा – **''अणुश्च''** (ब्रह्मसूत्र २/४/१२)के अनुसार जीवात्मा अणुपरिमाण वाला है, विभु (व्यापक) परिमाण वाला नहीं है। क्योंकि विभुका गमनादि संभव नहीं है और **'उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्'** (ब्रह्मसूत्र २/३/२०) इसकी उत्क्रान्ति (देहसे सम्बन्ध वियोग) गति (गमन) और आगति (आगमन) होती है। अणु होने पर यह आत्मा देह व्यापी सुख-दुःखोंका अनुभव धर्मभूतज्ञानके द्वारा करता है। जैसे कमरेके एक स्थान पर रखा हुआ दीपक अपनी प्रभाके द्वारा सम्पूर्ण कमरेको प्रकाशित करता है।

वैसे ही देहके एक भाग हृदयमें रहने वाला जीव अपने ज्ञानगुणके द्वारा देहव्यापी सुख-दुःखोंको जानता है। बद्धावस्थामें कर्मरूप अज्ञान के कारण यह ज्ञान गुण संकुचित होता है किन्तु मुक्तावस्थामें अज्ञानके मिट जानेसे ज्ञानगुण विभु हो जाता है। उस समय यह परब्रह्म तथा परब्रह्मात्मक सभीका अनुभव करता है।

अपना आत्मा देह, इन्द्रिय (बाह्येन्द्रिय), मन (अन्तर इन्द्रिय) प्राण और बुद्धि इन पाँचों से भिन्न है।

स्वयंप्रकाश :- आत्मा अपने प्रकाश (ज्ञान)में अन्य प्रकाशकी अपेक्षा न रखनेके कारण स्वयंप्रकाश कही जाती है। यह स्वरूपभूत ज्ञानसे सर्वकालमें अपनेको प्रकाशित करती है। जाग्रत और स्वप्नावस्थामें आत्मा धर्मभूत ज्ञानके द्वारा अपनेसे भिन्न विषयको भी जानती है। सुषुप्ति अवस्थामें विषय प्रकाशक ज्ञानके न रहनेसे विषयज्ञान नहीं होता है।

नित्यः :- परब्रह्मकी तरह जीवात्मा भी नित्य है। जैसे मनुष्य एक वस्त्रको छोड़कर दूसरा वस्त्र धारण करता है, वैसे जीव एक देह छोड़कर अन्य देहको धारण करता है। देहादि अनित्य हैं किन्तु आत्मा नित्य है। यह आत्मा देहधारणसे पूर्व अनादि कालसे विद्यमान थी। इस देहके न रहने पर भी अनन्त भविष्यमें रहेगी। **'नित्यो नित्यानाम्'** (कठोपनिषत् २/५/१३) (श्वेताश्वेतरोपनिषत् ६/१३) **'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे'** (गीता २/२०)में इसे नित्य कहा गया है।

मकारवाच्यो जीवो रकारवाच्याय रामायैव शेषभूत इति वाक्यार्थः ।।६।।

अर्थ - मकारका वाच्य जीव रकारके वाच्य श्रीरामका ही (अकारका वाच्य) शेष है। मकारका अर्थ जीव, रकारका अर्थ ब्रह्म तथा अकारका अर्थ शेष होनेके कारण यह अर्थ निष्पन्न होता है। जीव देवतान्तरका शेष नहीं है। यह रकार, अकार और मकार इन तीनों पदोंसे युक्त रां इस वाक्यका अर्थ है।

चतुर्थपदेन ''रामाय'' इत्यनेन सर्वचेतनाचेतनरमयितृत्वं, श्रीरमयितृत्वं उभयलिङ्गत्वं सर्वप्राप्यत्वं, सर्वव्यापकत्वं, सर्वविधबन्धुत्वं, उभयविभूतिनायकत्वं सत्यानन्दचिद्रूपत्वं च प्रतिपाद्यते ।।१०।।

अर्थ - चतुर्थ पद रामायके द्वारा सर्वचेतनाऽचेतनरमयितृत्व, श्रीरमयितृत्व, उभयलिङ्गत्व, सर्वप्राप्यत्व, सर्वव्यापकत्व, सर्वविधबन्धुत्व, उभयविभूतिनायकत्व और सत्यानन्दचिद्रूपत्वका प्रतिपादन किया जाता है।

व्याख्या - सर्वचेतनाऽचेतनारमयितृत्वम् - श्रीभगवान् चेतन और अचेतन सभीको आनन्द प्रदान करने वाले हैं। उनका सर्वचेतनाऽचेतनरमयितृत्व (सभी चेतन और अचेतनोंको आनन्द प्रदान करना) धर्म है। **'एष ह्येवानन्दयाति'** (तैत्तिरीयोपनिषत् २/७) यह परमात्मा ही सभीको आनन्द प्रदान करता है।

श्रीरमयितृत्वम् - भगवती सीता जगज्जननी हैं। उनका सभी प्राणियों पर वात्सल्यभाव होनेके कारण वे सभीको आनन्द प्रदान करती हैं। उन माता सीताजीको भी स्वस्वरूपभूत आनन्द और लीला जन्य आनन्द प्रदान करने वाले परात्पर श्रीराम हैं।

उभयलिङ्गत्वम् - वे निर्गुण हैं अर्थात् सभी प्रकारके दोषोंसे रहित हैं। एवं सगुण हैं अर्थात् समस्तकल्याणकारक गुणोंके आश्रय हैं। इस प्रकार परब्रह्म निर्गुण और सगुण दोनों हैं क्योंकि **'निर्गुणः'** (श्वेताश्वेतरोपनिषत् - ६/११) इत्यादि श्रुतियाँ श्रीभगवान्को निर्गुण (प्राकृत गुणोंसे रहित) कहती हैं। **पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते। स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'** (श्वेता० ६/६/१७) इत्यादि श्रुतियाँ उनको सगुण (अलौकिक गुणोंसे युक्त) कहती हैं। यह विषय **न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्ग सर्वत्र हि** इस ब्रह्मसूत्र ३/२/११ के आनन्दभाष्यमें द्रष्टव्य है। इसलिए भगवान् उभयलिङ्वान् कहलाते हैं। यहाँ लिङ्गका अर्थ है - चिह्न। जिस प्रकार छत्र और चामर राजाके असाधारण चिह्न होते हैं, उसी प्रकार सगुणत्व और निगुर्णत्व दोनों ही परब्रह्मके चिह्न हैं।

सर्वप्राप्यत्वम् – प्राणिमात्र भक्तिके द्वारा परब्रह्म श्रीरामको प्राप्त कर सकता है। अमुक व्यक्ति उनको प्राप्त कर सकता है। अमुक नहीं, ऐसा नियम नहीं है। वे सर्वसुलभ होनेके कारण सभीके द्वारा प्राप्य हैं।

सर्वव्यापकत्वम् – 'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा' (तैत्तिरीय आरण्यक उत्तरार्ध ३/११/३) श्रीराम सर्वात्मा हैं। सबके अन्दर प्रविष्ट होकर उनपर शासन करने वाले हैं। यहाँ सर्वात्माका अर्थ सबके अन्दर प्रविष्ट होकर शासन करने वाला है। सभीके अन्दर वही प्रविष्ट हो सकता है। जो सबसे सूक्ष्म होते हुए सर्वव्यापक हो। सभीके आत्मा श्रीभगवान् सर्वव्यापक हैं।

सर्वविधबन्धुत्वम् – 'प्रान प्रानके जीवन जीके स्वारथ रहित सखा सबही के।' श्रीराम प्राणोंके प्राण हैं, जीवोंके जीवन हैं। किसीसे कोई भी स्वार्थ न होते हुए वे सभीके सखा (सुहृद) हैं। श्रीभगवान् सभी प्राणियोंके सब प्रकारसे बन्धु हैं। '**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' (गीता ५/२९) यह स्वयं श्रीभगवान्‌का वचन है। वे हृदयसे सभीका भला चाहते हैं। चाहे कोई कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो। वे बन्धु (सुहृद्) होनेके कारण सतत भला करनेके लिए उद्यत रहते हैं। वे इतने महान् हैं कि जिन राक्षसोंने उनसे वैर किया, उनका भी उद्धार किया। तो भक्तोंका उद्धार वे करते हैं, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।

उभयविभूतिनायकत्वम् – 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि' (छान्दोग्योपनिषत् ३/१२/६)। श्रीभगवान् त्रिपादविभूति (अप्राकृत धाम) और लीला विभूति इन उभय विभूतियोंके स्वामी हैं। इसलिए उभय विभूतिनायक कहलाते हैं। त्रिपादविभूतिके अयोध्या, साकेत, वैकुण्ठ, गोलोकादि नाम हैं। यह प्रकृति मण्डल से पर है। उत्पत्ति, विनाशसे रहित है। **'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः** (सुबालोपनिषत् खण्ड ६) इत्यादि श्रुतियाँ इसका

वर्णन करती हैं। नित्य तथा मुक्तोंके द्वारा सेवित श्रीभगवान् सर्वदा एकरूपेण यहाँ विराजते हैं। ये परवासुदेवात्मक श्रीराम अवतारी हैं। श्रीभगवान् लीला करनेके लिए इस विभूतिमें अवतरित होते हैं इसलिए प्राकृत लोक (एकपादविभूति) लीला विभूति कहलाती है।

सत्यानन्दचिद्रूपत्वम् – 'सत्यं ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म' (तैत्तिरीयोपनिषत् २/१/१) ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है। यहाँ सत्य पदका अर्थ है – अविकारी। ''**सत्यपदं स्वरूपतो गुणतश्च विकारराहित्यं बोधयति। सर्वविकाररहितत्वात् सत्यस्वरूपं ब्रह्मेत्यर्थः''** (आनन्द भाष्य)। ऐसा होनेसे वे स्वरूपतः विकार वाली प्रकृति एवं गुणतः विकार वाले जीवसे भिन्न सिद्ध होते हैं। प्रकृति महद्, अहंकार आदि रूपोंमें परिणत होती है। मिट्टी घट रूपमें परिणत होती है। इस प्रकार जड़ प्रकृति स्वरूपतः विकारी है। जीवात्मा स्वरूपतः विकारी नहीं है। उसका स्वरूप हमेशा एक जैसा रहता है किन्तु उसके गुण धर्मभूत ज्ञान का शोक, मोह, सुख-दुःख आदि रूपोंमें परिणाम होता रहता है, अतः जीव गुणतः विकारी है। गुणतः विकार वाला बद्ध जीव ही है, मुक्त नहीं है। परमात्मा ज्ञानस्वरूप है। अनुकूलत्वेन अनुभूयमान होनेके कारण उसका यह ज्ञान स्वरूप ही आनन्द है। वे चिद्रूप अर्थात् चेतन हैं।

अनेन रागद्वेषकरणम् अबन्धुभूतेषु बन्धुत्वप्रतिपत्तिश्च व्यावर्त्यते।।११।।

अर्थ – चतुर्थ पदके द्वारा रागद्वेष करने और अबन्धुओंमें बन्धुत्वनिश्चय की व्यावृत्ति होती है।

व्याख्या – सभीको आनन्द प्रदान करने वाले भगवान् ही हैं, ऐसा समझकर उनकी उपासना करनी चाहिए क्योंकि अन्यके प्रति राग तो अपने प्रियतमसे विमुखता कराकर महान् दुःखके गर्तमें डाल देता है। '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' (छान्दोग्योपनिषत् ३/१४/१), **'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७/१९) **'सीय राममय सब जग जानी'** (मानस १/८/२) इत्यादि वचनोंके अनुसार सब कुछ परब्रह्म ही है

क्योंकि वे सर्वात्मा हैं। उनसे अतिरिक्त कोई है ही नहीं। ऐसा समझकर दूसरेसे द्वेष नहीं करना चाहिए।

जीव भगवान्‌को विस्मृत करता रहता है किन्तु श्रीभगवान् जीवको कभी भी विस्मृत नहीं करते हैं साथ भी नहीं छोड़ते हैं। सुख भोग, दुःख भोग आदि सर्व अवस्थाओंमें भी वे जीवके साथ ही रहते हैं। सहस्रों माता-पितासे भी अधिक वात्सल्य रखनेके कारण घोर नरक यातनाके समय भी वे साथ नहीं छोड़ते। जैसे माता पुत्रके सुस्वास्थके लिए चिकित्सालयमें उसकी शल्य क्रिया करवाती है, साथ भी रहती है। ऐसे ही श्रीभगवान् अपनी सन्तानोंके पापक्षयके लिए कष्टदायक यातना प्रदान करते हुए भी साथ रहते हैं। सन्मार्गमें जीवको लाकर परम भक्तिके उदय तक साथ ही रहकर साधना करवाकर स्वयंकी प्राप्तिमें स्वयं ही हेतु बनते हैं। क्योंकि वही हमारे बन्धु (सुहृद) हैं। जीव उनका स्वाभाविक शेष (दास) है। वे जीवके स्वाभाविक रूपसे शेषी (स्वामी) हैं। अनादि अज्ञानके कारण जीव श्रीभगवान्‌से भिन्न अपने माता-पिता, भ्राता आदि सम्बन्धियोंको स्वबन्धु रूपमें स्वीकार करता है। इन अबन्धुओंको बन्धु समझना भ्रान्ति है। जब वह समझ जाता है कि सर्व समर्थ प्रभु ही सर्वदा हमारे साथ रहने वाले सच्चे बन्धु हैं। बन्धुत्वेन कल्पित अन्य सभी तो आने जाने वाले हैं। इस शरीरके पहले उनके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं था और बादमें भी नहीं रहेगा। ऐसा विचार करनेसे श्रीभगवान्‌के अतिरिक्त अबन्धुओंमें बन्धुत्व निश्चय रूप भ्रान्तिका निराकरण हो जाता है। श्रीभगवान्‌को ही सर्व प्रकारसे अपना बन्धु समझना यथार्थ ज्ञान है।

चतुर्थ्या स्वरूपानुरूपकैंकर्यप्रार्थना उच्यते।।१२।।

अर्थ - 'रामाय' यहाँ राम प्रातिपादिकसे आयी चतुर्थी विभक्तिके द्वारा जीवके स्वरूपके अनुरूप श्रीभगवान्‌का कैंकर्य प्राप्त करनेके लिए प्रार्थनाकी जाती है।

व्याख्या - कैंकर्य जीवस्वरूपके अनुरूप ही है। अपने

स्वरूपका भगवद्दासत्वेन ज्ञान न होनेके कारण ही कैंकर्यमें रुचि नहीं होती। गुरुजनोंके अनुग्रहसे अपने स्वरूपका यथार्थ बोध होने पर कैंकर्य अनुकूल प्रतीत होता है एवं उसमें रुचि उत्पन्न होती है। किंकर (सेवक)का कर्म कैंकर्य कहा जाता है। **'भगवत्प्रीतिजनकव्यापारविशेषः कैङ्कर्यम्'**- भक्तके प्रति श्रीभगवान्‌के प्रेमका उत्पादक कार्य विशेष (सेवा) कैङ्कर्य है। **'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।'** (गीता १८/४६) इस भगवद्गीता वचनके अनुसार अधिकारी विशेषके लिए विहित शास्त्रीय कर्म भगवत्कैङ्कर्य हैं। कर्तृत्वाभिमान तथा फलेच्छाके त्याग पूर्वक करने पर ये कर्म कैङ्कर्यकी कोटिमें आते हैं, क्योंकि इस प्रकार इनका आचरण करने पर श्रीहरि प्रसन्न होते हैं। इनका आचरण करने पर मनोमालिन्य निवृत्त होकर उत्तरोत्तर भक्ति योगकी वृद्धि होती है। श्रीभगवान्‌के लिए तुलसी, पुष्पका रोपण, उनका सिंचन, उनका चयन, रसोई पूजा, नाम जप, संकीर्तन आदि कैङ्कर्य ही हैं। कैङ्कर्यके लिए ही मानव शरीर मिला है। भक्तजन तो शरीर त्यागके पश्चात् मुक्तावस्थामें भी भगवत् धाममें भगवान्‌के कैङ्कर्यमें तत्पर रहते हैं। चतुर्थी विभक्तिके द्वारा उस कैङ्कर्यको प्राप्त करनेके लिए प्रार्थनाकी जाती है।

अनेन प्राप्तविषयान्तरसेवा व्यावर्त्यते।।१३।।

अर्थ - चतुर्थी विभक्तिके उक्त अर्थके द्वारा रागतः प्राप्त विषयान्तरके सेवनका निराकरण किया जाता है। हम भगवान्‌के ही स्वाभाविक दास हैं। उनका कैङ्कर्य ही हमारा कर्तव्य है। ऐसा समझने पर उनकी उपासना सुगम हो जाती है। भगवान्‌से अतिरिक्त कोई मेरा नहीं है। ऐसा समझकर उनका कैङ्कर्य करनेसे सांसारिक विषयोंका सेवन नहीं होता है।

पञ्चमपदेन नेत्यनेन भगवदन्यशेषत्वं तदन्यप्रयोजनत्वं स्वस्वातन्त्र्यं च व्यावर्त्यते।।१४।।

अर्थ - 'न' इस पञ्चम पदके द्वारा भगवदन्यशेषत्व,

भगवद्कैङ्कर्यान्यप्रयोजनत्व एवं जीवकी स्वतन्त्रताका निराकरण किया जाता है।

व्याख्या – जीव कामनाओंके कारण अपनेको श्रीभगवान् से भिन्न सांसारिक विषयोंका शेष (दास) समझता है। श्रीभगवान् के कैङ्कर्य से अन्य फलको अपना प्रयोजन मानता है। अपनेको स्वतन्त्र मानता है। 'न' इस पञ्चम पदके द्वारा इन सभीका निषेध किया जाता है। अपने को भगवान् से अतिरिक्त अन्य किसीका भी शेष नहीं मानना चाहिए। श्रीभगवान्के कैङ्कर्यको ही अपने जीवनका प्रयोजन समझे तथा सर्वदा श्रीभगवान्के अधीन अपनेको समझे। वस्तुतः जीव स्वतन्त्र नहीं है। यदि वह अपनेको स्वतन्त्र समझता है तो यह उसकी भ्रान्ति है।

तच्छ्रूयतामविद्यायाः स्वरूपं कुलनन्दन।
अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मतिः।।

(विष्णुपुराण ६/७/१०,११)

हे कुलनन्दन! अविद्याके स्वरूपको सुनो। अनात्मा देहादिमें जो आत्म बुद्धि होती है। वह अविद्या है। जो पदार्थ अपना नहीं है, उसको अपना मानना अविद्या है। श्रीभगवान्के अधीन अपनेको समझना तथा उनसे अतिरिक्त अपना कुछ न समझना ही यथार्थ ज्ञान है।

षष्ठपदेन म इत्यनेन जीववाचकेन जीवस्य भगवदनन्यार्हशेषत्वं तत्कैंकर्यप्रयोजनत्वं तत्पारतन्त्र्यस्वरूपत्वं च प्रतिपाद्यते।।१५।।

अर्थ – जीववाचक मः इस षष्ठ पदके द्वारा जीवका भगवदनन्यार्हशेषत्व, भगवत्कैङ्कर्यप्रयोजनत्व और तत्पारतन्त्र्य स्वरूपका प्रतिपादन किया जाता है।

व्याख्या – जीव एकमात्र भगवान्का ही शेष है, अन्य किसीका नहीं। श्रीभगवान्की सेवा (कैंकर्य) ही इसका एकमात्र प्रयोजन है। **'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा'** (तैत्तिरीय आरण्यक ३/११/३) तथा **'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि**

मायया' (गीता १८/६१)। इन वचनोंके अनुसार जीवात्माका स्वरूप परमात्माके अधीन ही है। षष्ठ पदके द्वारा ये विषय प्रतिपादित होते हैं।

(षष्ठ पदके द्वारा प्रतिपादित अर्थसे विपरीत अर्थका पञ्चम पदसे निषेध किया जाता है। अतः पञ्चम पदेन .... इत्यादि वाक्यमें आये तदन्यप्रयोजनत्वम्का अर्थ तत्कैङ्कर्यान्यप्रयोजनत्वम् समझना चाहिए।)

तत्र वाक्यार्थः मकारवाच्यो जीवो रकारवाच्याय रामायैव न स्वस्मै न अन्यस्मै तद्भोग्यभूतः ।।१६।।

अर्थ – (पञ्चम और षष्ठ पदोंका उपर्युक्त अर्थ होने पर) इन दो पदसमूहरूप वाक्यका अर्थ यह है कि मकारका अर्थ जीव, रकारके अर्थ अपने प्रिय स्वामी श्रीमद्रामचन्द्रजीके लिए ही है। यह न तो अपने प्रयोजनके लिए है और न ही अन्य किसीके प्रयोजन के लिए है, यह श्रीभगवान्का भोग्य है।

व्याख्या – जीवका अपना स्वरूप श्रीभगवान्के प्रति भोग्य है। श्रीभगवान् भोक्ता हैं। भोक्ता जैसा चाहे, वैसा भोग्य पदार्थोंका उपयोग कर सकता है। भोग्य वस्तुकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती है। परमार्थतः जीवका स्वरूप श्रीहरिके प्रति भोग्य ही है। भोग्य पदार्थ स्वतन्त्र नहीं होता है। भोक्ताके अधीन ही होता है। वे जैसे भी सेवा लेना चाहें, ले सकते हैं। अपनेको भगवान् का भोग्य न मानना तथा सांसारिक पदार्थोंको अपना भोग्य मानकर उनका भोक्ता स्वयंको मानना आदि अविद्या-ग्रन्थिकी प्रबलतासे होता है। अनन्यभावसे भजन करने पर यह ग्रन्थि शिथिल होते-होते अन्तमें नष्ट हो जाती है, इसलिए भगवत्शेषत्वेन अपना अनुसन्धान करना चाहिए।

अखण्डनमः शब्दः उपाय वाचकः। तत्र मकार वाच्यस्य मम रकारवाच्यः श्रीराम एवोपायः उपेयभूतश्च।। १७।।

अर्थ – अखण्ड नमः शब्द उपायका वाचक है, ऐसा अर्थ करने पर 'मकारका वाच्य मेरे (जीवात्माके) रकारके वाच्य श्रीराम ही उपाय और उपेय हैं।' यह वाक्यार्थ सम्पन्न होता है।

व्याख्या – जब नमःके अन्तर्गत विद्यमान न और मः को पृथक् पद मानते हैं। तब मन्त्रराजमें छः पद होते हैं। जब नमःको अखण्ड पद मानते हैं, तब इसमें पाँच पद होते हैं। उपेयका अर्थ है – प्राप्य। उपायका अर्थ है – प्रापक या प्राप्तिका साधन। भक्तके द्वारा श्रीभगवान् प्राप्य (उपेय) हैं। श्रीभगवान् अपनी प्राप्तिमें स्वयं ही उपाय बनते हैं। भक्ति और प्रपत्तिके द्वारा प्रसन्न होकर वे स्वयं ही उपाय और उपेय बनते हैं।

(श्री स्वामी अग्रदास जी द्वारा कृत मन्त्रार्थमें 'रां' इस बीजके व्याख्यानभूत ही 'रामाय नमः' ये पद हैं। अतः उनके व्याख्यानमें पुनरुक्ति दोष की शंका नहीं करनी चाहिए)

'राम्' इति बीजेनानन्यार्हशेषत्वं रामाय इत्यनेनानन्यार्हभोग्यत्वं नमः शब्देनानन्योपायत्वमिति तात्पर्यार्थः।।१८।।

अर्थ – 'रां' इस बीजके द्वारा जीवका अनन्यार्हशेषत्व, रामाय इस चतुर्थ्यन्त पदके द्वारा अनन्यार्ह भोग्यत्व तथा नमः शब्दके द्वारा अनन्योपायत्वका प्रतिपादन किया जाता है।

(इस वाक्यसे श्री अग्रदास स्वामी जीने पूर्वोक्त तीन पदोंका सार कहा है।)

प्रयोजन विशेषकेलिए मन्त्रके पदोंके अर्थका अनुसन्धान

देहासक्तात्मबुद्धिर्यदि भवति पदं साधु विद्यात्तृतीयम्
स्वातन्त्र्यान्धो यदि स्यात् प्रथममितरशेषत्वधीश्चेद् द्वितीयम्
आत्मत्राणोन्मुखश्चेन्नम इति च पदं बान्धवाभासलोलः
शब्दं रामाभिधेयं विषयचपलधीश्चेच्चतुर्थी प्रपन्नः।।

यदि इस देहमें आसक्त होनेके कारण उसमें आत्मबुद्धि होती है। तो इस देहात्मबुद्धिरूप भ्रान्तिके निवारणके लिए मन्त्रराजके

तृतीय पद मकारके अर्थका अनुसन्धान करना उचित होता है। यदि यह जीव अपनी स्वतन्त्रतामें अन्धा होता हो तो प्रथम पद रकारके अर्थका अनुसन्धान करना चाहिए। जब यह अपनेको श्रीभगवान्से अन्यका शेष समझे, तब द्वितीय पदके अर्थका अनुसन्धान करे। अपनी रक्षाके लिए उपायान्तरमें प्रवृत्त होने पर नमः इस पदके अर्थका अनुसन्धान करे। श्रीभगवान् ही हमारे बान्धव (बन्धु) हैं। तद्भिन्न सभी बान्धवाभास हैं। पुत्रमित्रकलत्रादि बान्धवाभासोंमें प्रीति होने पर राम शब्दका अर्थानुसन्धान करें। विषयोन्मुख, चपल, बुद्धि होने पर चतुर्थी विभक्तिका अर्थानुसन्धान करे।

द्वितीय रहस्यम्

श्रीरामः शरणं मम

द्वितीयं रहस्यं श्रीरामः शरणं ममेत्यष्टाक्षरात्मकं पदत्रयं तत्र प्रथमं पदं श्रीरामः इति द्वितीयं पदं शरणमिति ममेति तृतीयं पदम्।।१।।

अर्थ – 'श्रीरामः शरणं मम' यह द्वितीय रहस्य है। इस रहस्यात्मक मन्त्रमें तीन पद हैं। उस मन्त्रमें प्रथम पद 'श्रीरामः' है। द्वितीय पद 'शरणम्' तथा तृतीय पद 'मम' है। श्रीरामः इस प्रथम पदमें तीन अक्षर 'शरणम्' इस द्वितीय पदमें तीन अक्षर तथा 'मम' इस तृतीय पदमें दो अक्षर हैं, इस प्रकार कुल मिलाकर इस मन्त्रमें आठ अक्षर हैं।१।।

तत्र श्रीशब्देन समस्तसमाश्रयणीया परमात्माश्रितनिखिल-जीवदोषनिहन्त्री श्रीरामं भगवन्तं चेतनाचेतनविज्ञापनं श्रावयन्ती स्वगुणैरखिलं विश्वं पूरयन्ती भगवती श्रीसीतोच्यते।।२।।

अर्थ – 'श्रीरामः' पदके अन्तर्गत श्रीशब्दके द्वारा अपने गुणोंसे अखिल विश्वको व्याप्त करने वाली, परमात्मा श्रीरामके आश्रित रहने वाले जीवोंके दोषोंको नष्ट करने वाली, चेतनाऽचेतनोंके उद्धारके लिए उनकी प्रार्थना भगवान् श्रीरामको सुनाने वाली, समस्त

जगत्के द्वारा सम्यक् आश्रय लेने योग्य भगवती श्रीसीता जी कही जाती हैं। जैसे श्रीराम अपने गुणोंसे समग्र विश्वको व्याप्त करते हैं। भगवती सीताजी भी वैसी ही हैं। ममतामयी जगदम्बा भगवती सीता जीका वात्सल्य हृदय भक्तकी करुण पुकारसे शीघ्र द्रवित हो जाता है। **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।** वे शीघ्र ही अपने भक्तकी प्रार्थना श्रीराम जीको सुना देती है। इस सन्दर्भमें विनय पत्रिकाके प्रस्तुत दो पद मननीय हैं –

कबहुँक अंब, अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ।।१।।
दीन, सब अँगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु–दासी–दास कहाइ।।२।।
बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ।।३।।
जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ–गुन–गन गाइ।।४।।

२

कबहुँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं, किये पन चातक ज्यों,
प्यास प्रेम–पानकी।।१।।
सरल प्रकृति आपु जानिए करुना–निधानकी।
निजगुन, अरिकृत अनहितौ, दास–दोष, सुरति चित,
रहत न दिये दानकी।
बानि बिसारनसील है मानद अमानकी।
तुलसीदास न बिसारिये, मन करम बचन जाके,
सपनेहुँ गति न आनकी। (विनय पत्रिका)

तथा रामपदेन वात्सल्यस्वामित्वसौशील्यसौलभ्यसर्वज्ञत्वसर्व–शक्तित्वावाप्तसमस्तकामत्वसर्वजगत्कारणत्वसकलफलप्रदत्व–निरवधिकदयासौंदर्यमाधुर्याद्यनन्तगुणगणविशिष्टो रामः प्रतिपाद्यते।।३।।

अर्थ – श्रीरामः पदके द्वितीय घटक राम शब्दसे वात्सल्य, स्वामित्व, सौशील्य, सौलभ्य, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, अवाप्तसमस्तकामत्व, सर्वजगत्कारणत्व, सकलफलप्रदत्व, असीमित दया, असीमित सौन्दर्य, असीमित माधुर्य आदि अनन्त गुणसमूहोंसे विशिष्ट श्रीरामका प्रतिपादन किया जाता है।।३।।

उपायः शरणशब्देन उच्यते।।४।।

अर्थ – 'शरणम्' इस द्वितीय पदके द्वारा उपाय कहा जाता है।

व्याख्या – उक्त प्रकारसे 'श्रीरामः शरणम्'का अर्थ है। मेरे द्वाराकी जाने वाली श्रीरामकी प्राप्तिमें श्रीराम ही उपाय हैं, अन्य उपाय नहीं है। ऐसे अनुसन्धानसे श्रीभगवान् द्रवित होते हैं और भक्तके द्वाराकी जाने वाली भगवत्प्राप्तिमें स्वयं ही उपाय बन जाते हैं।।४।।

ममेति पदेन भगवच्छेषत्वज्ञानानन्दत्वाद्युक्तलक्षणो जीवः उच्यते।।५।।

अर्थ – 'मम' इस तृतीय पदके द्वारा भगवत्शेषत्व, ज्ञानत्व, आनन्दत्व, आदि गुणोंसे विशिष्ट जीव कहा जाता है।।५।।

मन्त्रमें आये हुए पदोंके अर्थोंको कहकर अब मन्त्रार्थको कहते हैं।

भगवच्छेशत्वादिलक्षणस्य मम जीवस्य उक्त गुणविशिष्टया सीतया सहितो वात्सल्यादिगुणविशिष्टः श्रीराम एव स्वप्राप्तेः उपायः उपेयश्च इति वाक्यार्थः।।६।।

अर्थ – भगवत्शेषत्व, ज्ञानत्वानन्दत्वादि उक्त लक्षणोंसे युक्त मुझ दासके वात्सल्य आदि गुण विशिष्ट भगवती सीता सहित वात्सल्यादिगुण विशिष्ट श्रीराम ही अपनी प्राप्तिमें उपाय और उपेय दोनों हैं। **'उपायः शरणशब्देन उच्यते'** इस वाक्यमें उपाय पदको उपेयका उपलक्षण समझना चाहिए क्योंकि ऊपर मन्त्रार्थ करते समय श्रीरामको उपाय और उपेय दोनों कहा गया है। **'स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वम् उपलक्षणत्वम्'** उपलक्षण अपना बोधक होते हुए

अपनेसे इतरका भी बोधक होता है। **'उपायः'** पद अपना बोधक होते हुए अपनेसे इतर उपेयका भी बोधक है। उपायको साधन या प्रापक कहा जाता है। उपेयको प्राप्य कहा जाता है, इस प्रकार 'श्रीरामः शरणं मम' इस वाक्यका अर्थ कहा गया।।६।।

द्वितीय रहस्य समाप्त

तृतीय रहस्य

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।।

सकृदेव एकवारम् एव अनावृत्तिलक्षणां तवास्मीति च याचते इति प्रपन्नाय मानसीं, वाचिकीं च प्रपत्तिं कृतवते अधिकारिणे अनालोचितविशेषाशेषलोकशरण्यो रघुकुलोद्भवो रामोऽहं सर्वभूतेभ्यो अभयं ददामि दद्यामित्यर्थः।।१।।

अर्थ – सकृदेवका अर्थ है – एक बार ही अथवा अनावृत्ति। जाति, कुल, योग्यता आदि किसी विशेषताका विचार न करने वाला सम्पूर्ण लोकोंको शरण देने वाला रघुकुलमें उत्पन्न मैं राम 'मैं आपका ही हूँ' इस प्रकार एक बार ही मानसी प्रपत्ति करने वाले और वाचिकी प्रपत्ति करने वाले अधिकारीको सभी भूतोंसे अभय प्रदान करता हूँ।

व्याख्या – श्री स्वामी अग्रदास जी महाराजने चरममन्त्रमें आये **प्रपन्नाय** इस शब्दका तन्त्रसे मानसी प्रपत्ति करने वाले और वाचिकी प्रपत्ति करने वाले अधिकारीको यह अर्थ किया है। (सकृद्उच्चरितत्वे सति वह्वर्थबोधकत्वम् तन्त्रत्वम्) 'तवास्मि' यह शरणागतिका आकार है। मानसी शरणागति करते समय 'तवास्मि' यह मनका भाव रहता है। शब्दोच्चारण नहीं होता किन्तु वाचिकी प्रपत्तिमें 'तवास्मि' इस वचनका उच्चारण तथा वैसा मनोभाव भी होता है। मनोभाव उभय प्रपत्तिमें वैसा ही होता है। मानसी प्रपत्तिमें

शब्दोच्चारण नहीं होता है, वाचिकी प्रपत्तिमें शब्दोच्चारण होता है। यही दोनोंमें भेद है। प्रपत्ति, शरणागति, एवं न्यास ये शब्द पर्याय हैं।
'सर्वभूतेभ्यः' इति पञ्चमी चतुर्थी च पञ्चमी पक्षे अभयमिति संकोचे मानाभावात भयहेतुभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः स्वस्मादपि अभयं ददामि।।२।।

अर्थ – सर्वभूतेभ्यः यहाँ चतुर्थी अथवा पञ्चमी विभक्ति है। पञ्चमी पक्षमें 'अभयम्' इस कथनके कारण भयके अपादानके संकोचमें प्रमाणका अभाव होनेसे भयका हेतु केवल रावण ही नहीं बल्कि भयके सभी हेतुओं लक्ष्मण आदि और अपनेसे भी अभय प्रदान करता हूँ।

अनेन सर्वस्येशान इत्यादि गुणजातं सूचितम् ।।३।।

अर्थ – श्रीभगवान्के इस कथनसे उनके सर्वशासकत्व, सर्ववशित्व आदि गुणसमूह सूचित होते हैं।

व्याख्या – श्रुतियाँ भगवान्को **'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः'** एवं **एष भूताधिपतिः** (बृहदारण्यक उप० ६/४/२२) ऐसा कहती हैं। सर्वका शासक ही सर्वसे अभय प्रदान कर सकता है। श्रीरामचन्द्रजी सबके शासक हैं। इसलिए वे शरणागतको सबसे अभय प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा कर रहे हैं।

चतुर्थीपक्षे च सर्वेभ्यो अभयं न केवलं विभीषणाय।।४।।

अर्थ – **''सर्वभूतेभ्यः''** यहाँ चतुर्थी विभक्ति पक्षमें यह अर्थ होता है कि केवल विभीषणको ही नहीं बल्कि **'तवास्मि'** इस प्रकार एक बार प्रपत्ति करने वाले सभी प्राणियोंको अभय प्रदान करता हूँ।

अनेन प्रपत्तिविद्यायां सर्वेषां देवमनुष्यादीनां जीवानामधिकारः सूचितः।।५।।

अर्थ – चतुर्थी पक्षमें उक्त अर्थके द्वारा प्रपत्ति विद्या (शरणागति)में देव, मनुष्यादि सभी जीवोंका अधिकार सूचित होता है।

व्याख्या – अनुपनीत मनुष्य सन्ध्योपासन और वेदाध्ययन नहीं कर सकता है। सन्ध्योपासन और वेदाध्ययन न करने वाला कर्म-विचार नहीं कर सकता है। कर्मविचार (कर्मज्ञान)से रहित तथा

गार्हस्थ-आश्रमसे रहित व्यक्ति वैदिक अग्निहोत्रादि कर्मोंका अधिकारी नहीं है। राजसूय और अश्वमेध यागका क्षत्रिय राजासे इतर व्यक्ति अधिकारी नहीं है। भक्तियोगको सम्पन्न करनेमें उपनिषत् प्रतिपादित विद्याओंके ज्ञान वाला व्यक्ति अधिकारी है। इस प्रकार कही गयी रीतिके अनुसार अधिकारी भेदसे उनके कर्मादि भिन्न हैं। एक व्यक्ति विशेषके लिए विहित कर्ममें अन्यका अधिकार नहीं होता है। किन्तु करुणा सागर श्रीरामके कथनसे शरणागतिमें प्राणिमात्रका अधिकार सिद्ध होता है।

अभयं ददाम्येतद् व्रतं ममेत्यनेन कस्यांचिदपि दशायां परित्यागायोग्यमित्यर्थः।।६।।

अर्थ – मैं शरणागतको अभय प्रदान करता हूँ। यह मेरी प्रतिज्ञा है। इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीभगवान्‌के द्वारा शरणागत किसी भी अवस्थामें परित्यागके योग्य नहीं है।

व्याख्या – 'रामो द्विर्नाभिभाषते' इस श्रीमद्‌रामायण वचनके अनुसार श्रीरामचन्द्र सत्य प्रतिज्ञ हैं। अपने वचनों पर सर्वदा अटल रहने वाले हैं। जब शरणागति करने वालेके उद्धारकी प्रतिज्ञा उन्होंने स्वयंकी है तब शरणागति करने वाला किसी भी अवस्थामें रहे। श्रीभगवान् उसका उद्धार करेंगे ही।

अभयमेव मोक्षो नाम, अथ सोऽभयं गतो भवति। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन इति ब्रह्मविद्या फलत्वेनश्रवणात्।।७।।

इति श्रीमद्‌अग्रस्वामि विरचितरहस्यत्रयार्थः समाप्तः।

मोक्षका ही नाम अभय है। **'अथ सोऽभयं गतो भवति'** (तैत्तिरीयोपनिषत् २/३१) जब मनुष्य अभय (मोक्ष)के साधनको स्वीकार करता है। तब वह अभयम् – मोक्षको गतः – प्राप्त करने वाला होता है। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन। (तैत्तिरीयोपनिषत् २/३३) आनन्द गुण वाले ब्रह्मकी उपासना करने वाला किसीसे भय नहीं करता। अर्थात् उसे सर्वदुःखोंका आत्यन्तिक अभावरूप मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्मविद्याके फलरूपसे

अभयका श्रवण होता है। ब्रह्मविद्याका फल मोक्ष होता है। अतः यहाँ अभय पदका अर्थ मोक्ष है। शरणागति भी ब्रह्मविद्या है। अतः शरणागतिरूप ब्रह्मविद्याका फल मोक्ष है। संसार बन्धनसे मुक्त होकर परब्रह्म श्रीसीतारामजीका सर्वदा दर्शन ही मोक्ष है।

रहस्यत्रय की व्याख्या समाप्त।

भगवदर्पणमस्तु।